सूर्यनाथ प्रसाद सिंह 'खुसर'
अनुवादक एवम् सम्पादक

माई: जगिया देवी
बाबू: नन्दीपति महतो सिंह
अर्धांगिनी: बिलटी सिंह
जनम मिति: २००५ साल फागुन १० गते
जन्म स्थान: सिमरा लक्ष्मीपुर, सिरहा
शिक्षा:-बि.कम.,एम.ए.अर्थशास्त्र
देश सेवा:- जिला तथा अंचल प्रबंधक, कृषि विकास बैंक लगायत बिभिन्न निकाय के पच्हतर जिल्ला मे ४२ बर्ष तक कार्यरत।
सक्रिय राजनीति/समाज सेबा:-सरकारी नोकरी स अवकाश बाद २०६३ साल स २०७१ तक लोकतन्त्र, गणतन्त्र,मधेश जन-बिद्रोह के लेल संघर्षरत। नेतासब के अभद्र कृया कलाप के बाद नागरिक समाज मे आबद्ध भ क देश,मधेस, जनता, समाज के सेबा मे संलग्न।
भ्रमण:-रसिया,थाईलैण्ड,चिन,भारत लगायत नेपालके सब भाग।
लेखन:-बिभिन्न पुस्तक,पत्र-पत्रिका मे आलेख प्रकाशन।
*श्रीमद्भागवतगीताअनुवाद/सम्पादन।

suryanathsingh22@gmail.com
https://www.facebook.com/suryanath.singh.7

श्रीमद् भगवत् गीता विश्व मे आध्यात्मिक ज्ञान के रूप मे भगवान् श्री कृष्ण अपन परम मित्र अर्जुन के जे उपदेश देने हय ऊ संवाद प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे अचूक मंत्र के रुप मे लागू होई हय। मनुष्य के स्वभाव, ओकर परिवेश अंततः गुरु-शिष्य परम्परा के प्रतिनिधित्व करैत गंभीर संदेश स जीवन मे हर-एक समस्या के समाधान करैत डेग-डेग पर मार्गदर्शन करै वाला पवित्र दोसर कुनो ग्रन्थ नै हय। जेना :-

"मनुष्य के परिणाम के चिंता नै करैत
लोभ लालच बिना निस्वार्थ आ निष्पक्ष भाव स
अपन कर्तव्य के पालन करके चाहि
अर्थात कर्म केनाई सब से बढ्का धर्म हय।"

जीवन मे लोभ, अहंकार, कुविचार सब नष्ट होइ आ ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, कल्याणयोग ई सब के आगमन होय अही विचार हेतु ७०० श्लोक मे लिखल श्रीमद्भागवत् गीता के पहिले बेर संस्कृत भाषा स मगही भाषा मे बहुत सरलता के साथ अनुवाद क क अपन गाम घर मे सेहो सब कोई पैढ सकै, बुझ मे सहजता होई तय खातिर मगही भाषिय पाठक तक पहुंचाब के अनुपमेय प्रयास है ई पुस्तक।

ISBN 978-9937-1-6054-4
9 789937 160544

₹299
$7.99

श्रीमद्भगवद्गीता (मगही भाषा मे अनुवाद)
सूर्यनाथ प्रसाद सिंह 'खुसर'

श्रीमद्भगवद्गीता
मगही भाषा में अनुवाद

अनुवादक एवम् सम्पादक
सूर्यनाथ प्रसाद सिंह 'खुसर'

ॐ

॥ श्री हरि ॥

साधारण भाषाटीकासहित

श्रीमद्भगवद्गीता

(मूलश्लोक ठेठ बोलचाल मगही भाषामा अनुवाद)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

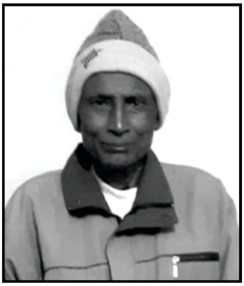

अनुवादक/सम्पादक
सूर्यनाथ प्रसाद सिंह "खुसर"

प्रकाशक :-"भाषा संस्कृति प्रतिष्ठान"
बिराटनगर, मोरंग, कोशी प्रदेश, नेपाल ।

ॐ

॥ श्री हरि ॥

बिनती-प्रार्थना

सर्वप्रथम पारब्रह्म परमेश्वर असंख्य ब्रह्माण्ड जगत के श्रृष्टि रचना केलकै, जीव-जन्तु, पेड-पौधा व अन्य आधारित सब प्रकार के श्रोत के सेहो समयान्तर में उपलब्ध करबैते गेलै । मनुष सर्वश्रेष्ठ प्राणी भेला के कारण भगवान प्रति सेहो येकर विशेष दायित्व बनलै । मानव धर्म के सब स पहिलाका धर्म सनातन धर्म हय, जेकरा हिन्दू धर्म व वैदिक धर्म सेहो कहै छय , वेद वेदान्तर स-प्रमाणित हय । यै धर्म के शुरुवात १,९६,०८,५३,११० (एक अरब छयानब्बे करोड आठ लाख त्रीपन हजार एक सौ दश वर्ष) पहिले भेलै। बहुतो धर्म-ग्रन्थ, वेद-पुराण काव्य आदि सब विभिन्न रचैता सब द्वारा रचल गेलै, ओहि मध्ये "वेद व्यास" जीद्वारा रचित श्री मद् भगवद् गीता सेहो एक महत्वपूर्ण धर्म ग्रन्थ हय । शास्त्र सब के अध्ययण आउर महापुरुष सब के बचन सब सुइन क हम यै निर्णय पर पुगली जे संसार में श्रीमद् भगवद्गीता के समान कल्याण के लेल दोसर कुनो ग्रन्थ नै हय । यी एक परम रहस्य के विषय हय । एकरा परम कृपालु श्रीकृष्णभगवान अर्जुन के निमित्त क क सर्व प्राणी सब के कल्याण के लेल कहने हय । गीता में ज्ञानयोग्य, ध्यानयोग्य, कर्मयोग्य, भक्तियोग्य, कल्याण-योग्य सेहो कहल गेल हय । यै मे स कुनो साधन के अपन श्रद्धा, रुचि, इच्छा, विचार आउर योग्यता अनुसार केला पर मनुष के बहुत जल्दी कल्याण भ सकतै । तै द्वारे अपन कल्याण चाहै वाला मनुष सब के लेल जते जल्द भ सके अज्ञान निद्रा स उईठ क अपन कर्तव्य समैझ क श्रद्धा- भक्ति स सदैव येकर श्रवण, मनन, आउर पठन-पाठन के अभ्यास क क भगवान श्रीकृष्ण के आदेश अनुसार साधन मे लाइग गेला पर जरुरे कल्याण हेतै । बहुतो भाषा में येकर अनुवाद भ चुकल हय, तैयो हमरा मन में एकाएक विचार भेल जे हम सब जे बजै छी यी भाषा ठेठ भाषा व मगहीभाषा हय, हम मगैहिया कोईरी कुशवाहा छी हमर मातृभाषा मगहि हय ।

हम अपन घरवाली स्व. बिल्टी सिंह अस्वस्थ रहै के अवस्थामे ओकरे सुनबै छेली । अहु भाषा मे येकर अनुवाद केला स यै भाषाभाषी सब के या यी भाषा बुझैवाला के सेहो बहुत सुविधा हेतै, पढै मे, बुझै मे, आउर दोसर सब के बुझबै में । यी सोइच क हम अपने सब के बिच यी अनुवाद रुपी श्रीमद्भगवद् गीता के पुण्यग्रन्थकाव्य अनुवाद केली जे सब के कल्याण हेतै जेना हमरा बुझै मे येलै । यी हमर प्रथम प्रयास हय, यै मे कुछो गल्ती भ सकै हय, ओकरा लेल अपने सब स उचित सर-सल्लाह आउर सुझाव के अपेक्षा सेहो करै छी। यी सब के हितकर हेतै, हम प्रार्थना करै छी।

अनुवादक/सम्पादक

सूर्यनाथ प्रसाद सिंह "खुसर" कुशवाहा

“भाषा र संस्कृति हाम्रो राष्ट्रको गौरव र पहिचान हो ।”

दर्ता नं. ३५५१/२०७५/०७६

भाषा-संस्कृति प्रष्ठिान

मोरङ, विराटनगर

कोशी प्रदेश

प.सं.: २०८०/०८१

प्रकाशकीय

भगवान श्रीकृष्णले लगभग ५००० वर्ष पहिले आफनो मित्र भक्त अर्जुनलाई भगवद्गीता सुनाउनु भएको थियो । भक्त अर्जुन र भगवान कुष्ण बीचको यो वार्ता संवाद मानव जातिको इतिहासमा सबै भन्दा महान दार्शनिक तथा धार्मिक वार्ता दर्शनको रुपमा लिईन्छ । यो संवादमुलक वार्ता **स्वस्थ्य, स्वच्छ, निर्मल र पवित्रताको** सन्देश दिन्छ । त्यसैले, भनिन्छ “श्रीमद्भगवद्गीताले समाजको प्राण भर्ने काम गर्छ ।”

श्रीमद्भगवद्गीता अथाह ज्ञानको सागर हो । यसको थोरै अध्ययनले हामीलाई समाजको रुपान्तरणमा र असल समाज निर्माण गर्नमा अहम भूमिका निर्वाह गर्छ । **मही मथेर धिऊ निकाल्नु** सरह श्रीमद्भगवद्गीता पढेर ज्ञान आर्जन गर्नु हो ।

स्मरणीय रहोस् महाभारतको भूमी युद्ध स्थलमा भगवान श्री कृष्णको उपदेश नै श्रीमद्भागवद् गीता हो । सो महाभारतमा अभिमन्यू नामक पात्र भगवान श्री कृष्णको भान्जा, महारथी अर्जुनको छोरा र राजा बिराटको छोरी ज्वाई हुन् । राजा बिराटको छोरी उत्तराको बिहे अभिमन्यू सँग भएको थियो । विराटनगर राजा बिराट दरबारको पवित्र भूमी हो ।

श्रीमद्भगवद्गीता मूलश्लोक ठेठ बोलचाल मगही भाषामा अनुवाद गर्नु भएको आदरणीय समाजसेवी **वर्ष ७५ को सूर्यनाथ प्रसाद सिंह** ज्यूको अथक प्रयासले सफलता प्राप्त भएको छ । स्थानीय बोलचालको **भाषा मगही** मा श्रीमद्भगवद्गीताको अनुवाद हुनु र बिराटनगर महानगरपालिकाको वडा न १४ ले आर्थिक सहयोग गरी दिनु भएकोमा १४ नं. वडा कार्यालयलाई हार्दिक धन्यवाद दिदै अभार व्यक्त गर्दछौं ।

जय प्रकाश महतो
अध्यक्ष

विराटनगर महानगरपालिका
१४ नं. वडा कार्यालय
विराटनगर, मोरङ
कोशी प्रदेश, नपाल

प.सं.– २०८०/२०८१ मिति :–२०८०/०८/२९

शुभकामना

वास्तवमा श्रीमद्भगवद्गीताको माहत्मयवानीद्धारा वर्ण भएको एक परम रहस्मय ग्रन्थ हो । भगवानको गुण प्रभाव र मर्मको बर्णन संस्कृत सुन्दर मगही भाषामा सरल रुपमा गिता शास्त्रमा लेखिएको छ । श्रीमद्भगवद्गीता अध्ययन गरेर अर्थ र भाव सहित अन्नत करणमा धारण गर्नु हाम्रो मुख्य सौभाग्य हुनेछ । यसमा लेखिएको एक एक शब्द स्वयं पदमनाभ श्री बिष्णु भगवानको मुखार बिन्दबाट निस्केको हो । अन्त कल्याणको इच्छा राख्ने मनुष्यको उचित धर्म यो हो कि मोहको त्याग गरेर अतिशय श्रद्धाभक्ति पुर्वक श्रीगीता जीको अध्ययन मनन गर्नु र आफनो अमूल्य दुर्लभ मनुष्य जिवन प्राप्त गरेर अमूल्य समयको सदुपयोग गर्न हुन सबै धर्मप्रेमी महासयहरुमा हार्दिक मंगलमय शुभकामना व्यक्त गर्दछौं ।

साथै, लेखक अनुवादक श्री सूर्यनाथ प्रसाद सिंह ज्यूले गरेको मेहनत यस समाज र भूगोलको लागि अति सम्मानीय उपयोगी हुनेछ भन्ने विश्वास लिएका छौं ।

सूर्य नारायण महतो
वडा अध्यक्ष
वडा नं. १४

दिना यादव
वडा सदस्य

बासुदेव शर्मा दुलाल
वडा सदस्य

सम्तली देवी विश्वास
वडा सदस्य

पुनम देवी राम
वडा सदस्य

पृथ्वी बस्नेत
वडा सचिव

पुस्तकको नाम	**: श्रीमद्भागवद्गीता**
अनुवादक/सम्पादक	: सूर्यनाथ प्रसाद सिंह (खुसर)
प्रकाशक	: भाषा–संस्कृति प्रतिष्ठान मोरंग, विराटनगर
संस्करण	: पहिलो, २०८० आ.व.
सर्वाधिकार	: लेखक/सम्पादकमा सुरक्षित
छपाई संख्या	: ५०० प्रति
विषेश सहयोगी	: १४ नं. वडा कार्यालय, विराटनगर महानगरपालिका
टाईपिङ	: लेखक/सम्पादक : स्वयम्
कम्प्यूटर सेटिंग	: घनश्याम चौधरी/जय प्रकाश महतो
पुस्तक पाईने ठेगाना	: भाषा-संस्कृति प्रतिष्ठानको कार्यालय विराटनगर

विषयसूची

क्र.सं.	पेज नं.
अध्याय-१	१
अध्याय-२	९
अध्याय-३	२२
अध्याय-४	२९
अध्याय-५	३६
अध्याय-६	४१
अध्याय-७	४९
अध्याय-८	५४
अध्याय-९	५९
अध्याय-१०	६५
अध्याय-११	७२
अध्याय-१२	८४
अध्याय-१३	८७
अध्याय-१४	९४
अध्याय-१५	९९
अध्याय-१६	१०३
अध्याय-१७	१०७
अध्याय-१८	११२
गीता जी आरती	१२७

श्रीमद्भगवद्गीता

॥ श्री गीताजी ॥

॥॥ श्री हरि ॥॥

श्री कृष्ण के रुप-स्वरुप के ध्यान

जै गोपाल हरे प्रभु जै गोपाल हरे ।
दुर्बल दुखी जनों के संकट सदा हरे ॥
क्रीट-मुकुट, कटि किंकिन, पग नुपुर साजे ।
चारु चिंबुक विम्बाधर, कर मुरली राजे ॥
वक्षस्थल वनमाला, कौस्तुभ मणि धारी ।
वृन्दा विपिन विहारी, निजजन सुखकारी ॥
अलकावली अति सुन्दर, भाल तिलक सोहै ।
कुण्डल द्वै मकराकृत, सुर मुनि मन मोहै ॥
यदुनन्दन जग वन्दन, कोमल श्यामांगे ।
वारिजवदन सुशोभित, निर्जित मदनांगे ॥
श्रेष्ठ सुहृद सर्वेश्वर, सर्व सृष्टि स्वामी ।
सत पथ परम प्रदर्शक, ईश गरुड गामी ॥
सुखसागर गुणआगर नटनागर भगवान् ।
रसिकजनन हृदयेश्वर बृजपति विश्वात्मन् ॥
पूर्ण पुरुष पुरुषोत्तम, आनन्द धन राशी ।
नारायण नित नूतन, अव्यय अविनाशी ॥
कृष्ण नाम गुण कीर्तन, जो जन नित्य करै ।
अतिअपार भवसागर, सहजहि पार तरै ॥

ॐ

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता

अध्याय-१

अथ प्रथमोऽध्यायः

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥

धृतराष्ट्र संजय स पुछलकै हे संजय ! धर्मभूमि कुरुक्षेत्र के मैदान मे युद्ध करै के विचार स जम्मा भेल हमर आउर पाण्डु भाई के बेटासब कि क रहल हय ? ॥१॥

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा बचनमब्रवीत् ॥

संजय कहै हय-वै समय राजा दुर्योधन व्यूहरचना स परिपूर्ण पाण्डव के पूर्ण सेना के देख क गुरु द्रोणाचार्य के लग मे जा क यी बात कहलकै ॥२॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां दुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥

हे गुरु (द्रोणचार्य)-अपने के बुद्धिमान शिस्य दुपदपुत्र धृष्टद्युम्न स व्यूहाकार चारो तरफ स सुसजित पंक्तिबध खडा भेल पाण्डु बेटा सब के बरीभारी विशाल सेना सव के देखू ॥३॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशीराजश्चवीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उतमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथा : ॥

यै सेना सव मे बढका स बढका धनुषधारी योद्धा के साथ-साथ भीम, अर्जुन के समान वलशाली शुरवीर, सात्यकि, परम प्रतापी योद्धा विराट,

महारथी राजा दुपद, धृष्टकेतु, चेकितान, येनाहि महावलवान काशीराज, पुरुजित, कुन्तीभोज, शैब्य, पराक्रमी युधामन्यु आउर महावली उत्तमौजा, सुभद्रा के अति चतुर सुयोग बेटा अभिमन्यु साथ साथ द्रौपदि के पाँचो अति बुद्धिमान वलशाली बेटा सब के देखु । जे कुनो प्रकार स कमजोर नै हय ॥४-६॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोतम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थ तान् ब्रवीमि ते ॥

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्य ! अब अपने पक्ष यानी दुर्योधनपक्ष के प्रधान योद्धा और सेना सब के सेनापति सब के देखु, विस्तार मे हम अपने स कैह रहल छी । बता रहल छी ॥७॥

भगवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जय : ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च॥

अपने खुद आउरभीष्मपितामह, कर्ण आउर संग्राम युद्ध जितैवाला कृपाचार्य, महावली वीर अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत के सुयोग्य बेटा भूरिश्रवा जेहन योद्धा सब सेहो यै समूह मे हय ॥८॥

अन्ये च बहव : शूरा मदर्थे त्यक्तजीविता : ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदा : ॥

यै के बाहेक आउरो बहुत बलवान सुरवीर योद्धा सब हय, जे युद्ध कर मे बहुत बुद्धिमान तथा चतुर हय । जे अनेक तरह के अस्त्र शास्त्र सब स सुसज्जित हय ॥९॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्॥

येनाही भीष्मपितामह स रक्षा केल गेलै दुर्योधन के सेना-सब, सब तरह सअजय मानल गेलै, ओनाही महावली भीमद्वारा रक्षा केल गेल पाण्डव सेना सब युद्ध मे जीतै मे बहुत कुशल आउर सुगम हय ॥१०॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥

येही स सब मोर्चा पर अपन-अपन जगह स अपने सब स्थिति मे भीष्मपितामह के हर ओर स सुरक्षित राखु ॥११॥

तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धःपितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चै : शंङ्ख दध्मौ प्रतापवान् ॥

यहि बखत कौरब सब मे बृद्ध और परम प्रतापी पितामहभीष्म,दुर्योधन सब के हृदय मे खुशीहर्ष उत्पन करैत सिंह के दहाड जेना अवाज मे गरैज क शंख बजा क उत्साहित केलकै ॥१२॥

ततःशुङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सह सैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् : ॥

यै के वाद नंगेरा, ढोल, मृदंग, नरसिंहा सब बाजा सब एक साथ बैजगेलै। जेकर अवाज बहुत भयावह शब्द मे सुनल गेलै ॥१३॥

ततःश्वेतैर्हयैर्युक्ते महती स्यन्दने स्थितौ ।
माधवःपाण्डवश्चैव दिव्यौ शुङ्खौ प्रदध्मतुः ॥

येहि बीच उजरका घोडा बाला उत्तम रथपर बैठ क श्री कृष्ण भगवान/अर्जुन सेहो अलौकिक अवाज मे शंख बजौलकै ॥१४॥

पाञ्चजन्यं हृषिकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंङ्ख भीमकर्मा वृकोदरः ॥

श्रीकृष्ण भगवान पांचजन्य नामक अर्जुन देवदत नामक आउर भीमसेन पौण्ड्र नामक महाशंक बहुत वडा अवाज मे बजौलकै ॥१५॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठरः ।
नकुल : सहदेवश्च सुधोषमणीपुष्पकौ ॥

येही प्रकार राजायुधिष्ठिर अनन्तविजय नामक, नकुल सुघोष नामक, सहदेव माणिपुष्पक नामक शंख एक साथ बजा क उत्साहित केलकै ॥१६॥

काश्यश्च परमेष्वासःशिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ।
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्चमहाबाहु : शङ्खन्दघ्मुः पृथक् पृथक् ॥

धनुषवान मे श्रेष्ठ काशीराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, राजा विराट, अजय सात्यकि राजाद्रुपद या द्रौपदि के पाँचो बेटा सब एवं बढका

भुजावाला सुभद्रा के बेटा अभिमन्यु यी सब के सब चारो तरफ स अलग-अलग शंख बजौलकै ॥१७-१८॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥

यै सब शंख सब के भयानक अवाज स आकाश, पृथ्वी के गुन्जायमय क अपने के दुर्योधन पक्षवाला के हृदय विदीर्ण क देल कै ॥१९॥

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

अर्जुन उवाच

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धकामनवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥

हे राजन। यै के वाद कपिध्वज अर्जुन मोर्चा बाइन्ह क येलहा सब कुटुम्व सब के देख क श्री कृष्ण भगवान स यी बात कहलकै - हे अच्यूत ! हमरा रथ के दोनो तरफ के सेना के बीच मे खरा क रोकु, जै स हम युद्ध क्षेत्र मैदान मे तत्पर युद्ध के लेल तैयार युद्ध करै वाला खडा भेल योद्धा सब के ठीक स देख ली ॥२०-२२॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥

दुर्योधन के युद्ध मे हितैषी रखैवाला सब राजा आउर सेना सब के हम देख चाहै छी ॥२३॥

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषिकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरु भयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान्कुरुनीति ॥

संजय कहलकै-हे राजन! अर्जुन के यै प्रकार केअनुरोध केला पर श्रीकृष्णचन्द्र द्वारा दोनो तरफ के सेना के बीच मे भीष्म आउर द्रोणाचार्य के साथ सब राजा सब के सामने मे अर्जुन चढलाहा रथ खडा केलकै, आउर कहलकै हे पार्थ (शिष्य) युद्ध के लेल तत्पर कौरव तरफ के सब के दे ख ॥२४-२५॥

तत्रापश्चत्स्थितान् पार्थ : पितृनथ पितामहान् ।
आचार्यानन्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥
श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरु भयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ॥
कृपया परयाविष्टो विषिदन्निदमब्रवीत् ।

यै प्रकार स पृथां के बेटा अर्जुन दोनो तरफ के सेना सब के बीच मे खडा भ क ताउ, चाया सब के दादा सब के, परदादा सब के, गुरु सब के, मामा सब के, सब भाई के, सब भतिजा सब के, बेटा सबके, पोता सब के, ससुर सब के, दोस्त सब के, साथे शुभचिन्तक सब के देखलकै । यै सब कुटुम्ब के देख क अर्जुन बहुत दुःखी भ क शोकयुक्तवाणी स कहलकै ॥२६ स २८ के पूर्वार्ध ॥

अर्जुन उवाच

दृष्टवेमं स्वजनं कृष्णं युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरिरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥

अर्जुन कहलकै श्रीकृष्ण स युद्ध मैदान मे खडा रहल यी युद्ध करैवाला अपना जन सब के देख क हमर अंग अंग शिथिल आउर बहुत कमजोर भ क एकटा अलग कम्पन, रोमांच पैदा भ रहल हय ॥२८ के उत्तरार्ध आउर २९॥

गाण्डीवं स्त्रंसते हस्तात्वक्चैव परिह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥

तै स हमर गाण्डीव धनुष गीर रहल हय, हमर शरीर मे जलन भ रहल हय, साथ ही हमर मन भ्रमित भ रहल हय, जै स हम ठीक स खडाहो नै भ सकै छी ॥३०॥

निमित्तानि च पश्चामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥

हे केशव! हम लक्षण के हित, विपरीत देख रहल छी, आउर युद्ध मे स्वजन सब के माइर क कोनो तरह के कल्याण सेहो नै देख रहल छी ॥३१॥

न काङक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥

हे कृष्ण-हम न त विजय चाहै छी, न राज्य आउर न सुख, हमरा यै तरह के राज्य, सुख, भोग स कि फाईदा हेतै से हो नै जनै छी ॥३२॥

येषामर्थे काङि्क्षतं नो राज्यं भोगा : सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्रणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥
आचार्या : पतिर : पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुला : श्वशुरा : पौत्रा श्याला : सम्बन्धिनस्था ॥

हम जेकरा सब के लेल राज्य, भोग आउर सुख राख चाहै छी, वही सब जीवन के आशा के छोईर क युद्ध के लेल खडा छय । यै मे हमर गुरुसब, ताउ, चाचा, बेटा सब, दादा, मामा, ससुर, पोता सब आउर हितैसी सब के हम देख रहल छीयै ॥३३-३४॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतो : किं नु महिकृते ॥

हे मधुसुदन हम तीनोलोक के राजपाट के लेल भी यै सब के नै मार चाहै छी, तब यै पृथ्वी के लेल कुछ कहनाई बेकार हय ॥३५॥

निहत्यघार्तराष्ट्रन्न : का प्रीति : स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैनाततायिन : ॥

हे जनार्दन ! धृतराष्ट्र के बेटा सब के माईर क हमरा कुन खुशी मिलतै ? येकरा सब के माईर क त हमरा पापे लगतै ॥३६॥

तस्मान्नार्हा वयं धार्तराष्ट्रान स्त्रबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिन : स्याम माधव ॥

तै स हे माधव-अपना स्वजन सब के मारनाई ठीक नै बुझाई य, कारण अपन कुटुम्ब के माईर क हम सुखी केना रैह सकबै ॥३७॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतस : ।

कुलक्षयकृतं दोषं मित्रदोहे च पातकम् ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभि : पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्य द्भिर्जनार्दन ॥

यी लोभी सब के मति भ्रष्ट के कारण कुल के नाश होई वाला दोष आउर दोस्ती के विरोध के पाप के नैह देख रहल हय । तब त अपना सब के सचेत भ क कुल नाश होई वाला पाप के रोकनाई अति जरुरी समैभ्फ क गम्भीर स विचार कर परतै ॥३८-३९॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्मा : सनातना : ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥

हे केशव- कुल के नास स कुल धर्म नष्टभजाई छै, जै स सम्पूर्ण कुल मे पापे पाप भैर जे तै ॥४०॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥

हे कृष्ण ! पाप अधिक बैढ जेवा के कारण कुल के स्त्री सब अधिक दूषित भ जाय छै, आउर यै स वर्णशंकर सन्तान सब उत्पन्न होई छै जे कुल के नाश करै वाला भ जेतै ॥४१॥

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्पपिण्डोदकक्रियाः ॥

वर्णशंकर सन्तान सब कुल के नरक मे ल जा क श्राद्ध, तर्पण स वंचित राईख क पितर सब के नरक मे अघोगति प्राप्त करवा दै हय ॥४२॥

दोषैरेतै : कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्म कुलघर्माञ्ज शाश्वताः ॥

यै प्रकार स वर्णसंकर कारक दोष सन्तान सब स सनातन धर्म, कुल धर्म आउर जाती धर्म सब नष्ट भ जाई हय ॥४३॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्यणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥

हे जनार्दन । जेकर सब के कुलधर्म नष्ट भ जाय हय ओकरा सब के अनन्त काल तक नरक मे वास होई हय ॥४४॥

अहो बत महत्प्रापं कर्तु व्यवसिता वयम् ।

यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यता : ॥

हा शोक ! यी दुःखकी बात हय, कि हम सब बुद्धिमान होइतो महान पाप क क राज्यआउर सुख के लेल अपन स्वजन सब के मारै के लेल तैयार छी जे नीमन नै हय ॥४५॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥

जदि हमरा शास्त्र धारण नै केला पर आउर युद्ध के लेल तैयार नहियो भेला पर घृतराष्ट्र के बेटा सब युद्ध मैदान मे माईरो देतै त, यी मरनाई हमरा लेल बहुत कल्याण कारक हेते जेना हमरा बुझाई य ॥४६॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुन : संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चाप शोकसंविग्नमानसः ॥

संजय कहै हय, हे राजन उद्धिग्न मन बाला अर्जुन यै प्रकार स कहि क वाण धनुष त्याग क रथ के पछाडी भाग मे जा क बैठ गेलै ॥४७॥

उँतत्सदिति श्रीभद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसवादेऽर्जुन विषादयोगोनाम प्रथमोडध्यायः ॥१॥

अध्याय-२
अथ द्वितीयोऽध्यायः
संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥

संजय कहलकै-येना करुणा स व्याप्त आउर आँसु स पूर्ण ब्याकुल नेत्रों वाला दुःखी अर्जुन स भगवान मधुसुदन यी बात कहलकै ॥1॥

श्रीभवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥

श्रीभगवान कहलकै-हे अर्जुन! तोरा यै असमय मे यी मोह कै ल्या? कारण यी मोह नै त श्रेष्ठ व्यक्ति के आचरण हय नै स्वर्ग दै वाला आउर कीर्ति के बढवै वाला सेहो नही हय ॥२॥

क्लैब्यं मा स्म गम : पार्थ नैतत्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्तोतिष्ठ परन्तप ॥

तै स हे अर्जुन : नपुंसकता मत प्राप्त कर यी उचित नै, हे परंतप ! हृदय के कमजोरी के त्याग क युद्ध के लेल खडा भ जा ॥३॥

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभि : प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥

अर्जुन कहलकै- हे मधुसूदन!हम रणभूमि मे केना क भीष्मपितामह आउर द्रोणाचार्य के विरुध लड़बै ? कारण हे अरिसूदन, यी दुनु हमर पुज्यनीय हय ॥४॥

गुरुनहत्वा हि महानुभावा-ञ्छ्रेयो
भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरुनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥

तै स यै गुरु सवके नै माइर क, बलकी हमरा भीख के अन्न ग्रहण केनाई ठीक रहत जेना हमरा लगै य । कारण यै गुरु सब के माईर क हमरा

रुधिर स प्राप्त अर्थ आउर कामरुपी भोग सब मात्र प्राप्त हेतै जेना हमरा लगै य ॥५॥

न चैतद्विद्भ कतरन्नो गरीयो-
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥

हम यी नै जनै छी युद्ध करनाई वा नै करनाई ठीक हय वा उचित हय, आउर यीहो नही जनै छी उ जिततै या हम जितव । जेकरा हम मार नै चाहि छी, वही हमर अपन लोक सब मुकावला के लेल खडा हय ॥६॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमुढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

यै कारण कायरता स आहत तथा धर्म के विषय स भ्रमित एवं मोहित चित अवस्था मे हम अपने स पूछै छि जे साधन निश्चित कल्याण कारक हय, उहे हमरा बताउ, हम अही के चेला छी, उचित शिक्षा के लेल अनुरोध
करै छी ॥७॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं-
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥

निष्कण्टक, धन-धान्य सम्पन्न राज आउर देवता सब के स्वामित्व के जीत क, सेहो वै रास्ता के नै देख रहल छी जै स हमर दुःख दूर भ सकै हय ॥८॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषिकेशं गुडाकेशः परन्तप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥

संजय कहै छै - हे राजन निन्द्रा के जीतैवाला अर्जुन अन्तर्यामी श्रीकृष्णा स यी बचन कहै के वाद, युद्ध नै करब कहि कऽ चुप भगेलै ॥९॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषिदन्तमिदं वचः ॥

हे भरतवंशी धृतराष्ट्र ! अन्तर्यामी श्री कृष्णामहाराज, शोकभरल अर्जुन स हैंस क यी बात कहलकै ॥१०॥

श्री भगवानुवाच
अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥

हे अर्जुन - तू जेकरा लेल दुःखी छ उ शोक कर योग्य नै हय तव तु पण्डीत जेका बात करै छ, जेकर प्राण चैल गेल हय ओकरा लेल, जेकर प्राण नही गेल हय ओकरा लेल ज्ञानी सब शोक चिन्ता नै करै छै यी बुझ ॥११॥

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥

येहन बात नै कि हम कुनो समय काल में नै छेली, तु आउर यी राजा सब सेहो नै छेलै आउर येहनो नै कि अगाडी समय मे हम सब नै रहब येहनो बात नै ॥१२॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

ये प्रकार स जीवआत्मा, यै शरीर मे बालकपन, युवा आउर बुढा अवस्था मे रहै छय तेनाही मरला के बाद दोसर शरीर प्राप्त होई छय ताहि द्वारे जानिफ कार लोक यै स प्रभावित नै होई छय ॥१३॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽ नित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

हे कुन्तीपुत्र-अर्जुन ! सर्दि-गर्मि,सुख-दुःख दै बाला इन्द्रि सब, विषय के संयोग क्षणभंगुर नासवान हय,तै स येकरा सहन कर ॥१४॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।

समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥

कारण हे पुरुषोत्तम ! दुःख सुख के समान बुझै बाला जे सज्जनआदमी के इन्द्री सब आउर विषय सब स संयोग स व्याकुल नै क सकै, येहने लोकसब मोक्ष के भागी या योग्य होई छय ॥१५॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः ॥

हे अर्जुन । असत बस्तु के सता नै आउर सत के अभाव नै । यी दुनु के परख तत्वज्ञानि सब स देखल गेल हय ॥१६॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥

सम्पूर्ण जगत नाशवान हय, सिर्फ आत्मा अविनाशी हय, जेकरा विनाश कोइ नै क सकै हय ॥१७॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥

यी नाश स दुर अप्रमेय(अनंत), सदैव स्वरुप जीवात्मा स धारण कर वाला सब शरीर नाशवान मानल गेल हय । तै स भरतबंशी अर्जुन तूं युद्ध कर ॥१८॥

य एनं वेति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥

जे यै आत्मा के मर वाला समझै हय, आउर जे एकरा मरल मानै छय दुनु सत्य के नै जाइन रहल छय कारण यी आत्मा न केकरो मारै छै न केकरो स मारल जाय छय ॥१९॥

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यःशाश्वतोऽयं पुराणो-
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

यी आत्मा नै जनमै छय, नै मरै छय, सनातन हय, शरीर मैर गेला के बादो आत्मा जिवित रहै छय ॥२०॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।

कथं स पुरुषःपार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥

हे अर्जुन जे पुरुष यै आत्मा के नाशवान, नित्य अजन्मा आउर अव्यय जनै हय, उ केना क केकरो मरबौतै,मारतै ॥२१॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

जै प्रकार मानव पुरान बस्त्र के छोईर क नया बस्त्र पेनहै छै, तेनाही जीवआत्मा पुरान शरीर के छोइर क लभका शरीर मे प्रवेश करै छय ॥२२॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

यै आत्मा के शस्त्र नै काइट सकै य, आईग नै जलाव सकै य, पाइन सेहो नही गला सकै य, वायु सेहो नही सुखा सकै य, यी आत्मा सदा अमर रहै हय ॥२३॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

कारण यी आत्मा कटैवाला, जलवै वाला, भिगैवाला, आउर सुखबै वाला नै छय, यी त सदा सर्वब्यापी, अचल, स्थीर रहै वाला आउर सनातन हय ॥२४॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥

यै आत्मा के नै त इन्द्रि सब स देखल जेते आउर नै चिन्तन स । यी विकार रहीत हय । अतः यै आत्मा के लेल तोरा दुःख । शोक केनाई उचित नै हय ॥२५॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

परन्तु जदि तु यै आत्मा के बराबर जन्मैवाला मरैवाला मानै छ तैयो तोरा यै प्रकार स दुःखी होनाई ठीक नै, कारण जन्मै वाला के मौत निश्चीत आउर मरैवाला के सेहो जन्मनाई निश्चीत हय, तै स यै पर शोक केनाई दुःखी होनाई कुनो फाइदा नै हय ॥२६-२७॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥

हे अर्जुन । सब जीवजन्तु जन्म स पहिले । मरै के बाद अप्रकट रहै छय, खास क बीच अवस्था मे मात्र प्रकट होई छय, तै स शोक करनाई उचित नै ॥२८॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्धदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यबच्चैनमन्यःश्रृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥

हे अर्जुन । यी आत्म तत्व बहुत गहन हय, कुनो खास महापुरुषे आश्चर्य स देखै, कहै आउर बतबै हय, तैयो वास्तव मे एकरा बारे मे कोई नै जनै हय ॥२९॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

हे अर्जुन । यी आत्मा सब के शरीर मे सदा अमर हय, तै स यै लोग के लेल तु शोक नै क र ॥३०॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धार्च्छ्रेयोऽ न्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥

आउर तू अपना धर्म पर चल, भय न कर, कारण क्षत्रिय के लेल धर्म युद्ध स बढका दोसर कुनो कल्याण कर्तव्य नै हय ॥३१॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिन : क्षत्रिया : पार्थ लभन्तेयुद्धमीदृशम् ॥

हे पार्थ : स्वयम प्राप्त भेल आउर स्वर्ग द्वार जेहन येहन युद्ध भाग्यवान लोके के प्राप्त होई छय ॥३२॥

अथ चेत्वमियं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि ।

ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥
अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
सम्भावितस्य चाकीर्ति- र्मरणादतिरिच्यते ॥

कारण जदि तु यी धर्म युद्ध नै कर चाहै छे त कुनो बात नै, स्वधर्म, कीर्ति दुनु समाप्त भ, पाप प्राप्त हेत, सवलोक मे दीर्घ काल तक तोहर अपकीर्ति बहस चल तै जे कि मानैवाला व्यक्ति के लेल अपकीर्ति मरनाई स भी अधिक दुखद होई छय ॥३३-३४॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथा : ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥

जेकरा दृष्टि मे तू पहिले खुब सम्मानित छेले, उ वेवास्ता कर तौ, उ महारथी सब तोरा भय के कारण युद्ध स पछारी भ गेलै सेहो कह तौ ॥३५॥

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥

तोहर दुश्मन तोहर शक्ति के निन्दा क क अपट सपट बात सब सेहो कह त, यै स बेशी दुःख के बात कि हे तै ॥३६॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा मोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय : ॥

एकर उलटा युद्ध मे मैर क तोरा स्वर्ग प्राप्त हेत वा संग्रामजीत क पृथ्वी के राज्य प्राप्त हेत । तै लेल हे अर्जुन तु युद्ध निश्चित रुप स कर ॥३७॥

सुख दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥

जय-पराजय, लाभ-हानि सुख-दुःख के समान जाइन क युद्ध के लेल तैयार रह । यै तरह युद्ध केला पर पाप के भागी नै हेबे ॥३८॥

एषा तेऽमिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥

हे पार्थ । उपर उल्लेख बात सब ज्ञानयोग्य के बारे मे कहल गेल हय, अब तु कर्मयोग के बारे मे सेहो सुन ॥३९॥

नेहाभिक्रमनाशोऽति प्रत्यवायो न विद्यते ।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

यै कर्मयोग मे शुरु के अथवा बीज के नाश नै हय, यै कर्म योगरुप धर्म के एक छोटका श्रोत जनम-मरण के महान भय स रक्षा करै छय ॥४०॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥

हे अर्जुन । यै कर्मयोग मे ज्ञानी सब के बुद्धि एकेटा होई छय, लेकिन अस्थिर विचार बाला विवेक हीन लोक सब के बुद्धि बहुत भेदवाला आउर अनन्त होई छय ॥४१॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवन्दत्यविपश्चितः ।
वेदवादरताःपार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥
कामत्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

हे अर्जुन । जे भोगविलास मे तन्मय रहै हय, जे कर्मफल के प्रशंसक, वेद वाक्य सब मे प्रिति रखै हय, जेकरा बुद्धि मे स्वर्ग मात्र परम बस्तु हय जे स्वर्ग स बैढ क कुनो बस्तु नै छय माईन रहल हय । येहन विवेक हीन लोक सब यै प्रकार के दिखावा शोभायुक्त बचन के कहै हय, ओकरा सब के बात जनम रुप कर्मफल दै वाला, भोग, ऐश्वर्य के प्राप्त के लेल बहुत प्रकार के क्रिया कलाप के विषय पर जानकारी करै वाला हय, यै प्रकार के विचार स जेकरा बुद्धि विवेक हैर लै छय, जे भोग ऐश्वर्य मे लीन भ जाइै छय, येहन मनुष्य सब के "परमात्मा"प्रति आस्था नै होई छय, साथे बुद्धियो नै होइ छय ॥४२ से ४४॥

त्रैगुण्यविषय वेदा निस्त्रेगुण्यो भावार्जुन ।
निर्व्दन्व्दो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥

हे अर्जुन । वेद उपर उल्लेख प्रकार स, तीनु गुणवाला कार्यरुप, सम्पूर्ण भोग वाला साधन सब के प्रतिपादन करै वाला हय, तै स तु वै भोगवाला आउर ओकर साधान सब पर आशक्ति हीन, दुःखी खुशी सब द्वन्द स दूर रह आउर फल के इच्छा नै रखै वाला बैन जा ॥४५॥

यवानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥

सब तरफ स परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त भ गेला पर, छोटका जलाशय स मनुश्य के जते जरुरी रहै हय, ब्रह्म के तत्व स जनै बाला ज्ञानी के सब वेद स ओतने प्रयोजन रैह जाय हय ॥४६॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

तोरा कर्म करै पर अधिकार हऽ ओकरा फल पर कहियो नै । तै स तू न त कर्तव्य के फल पर इच्छा राख और नै कर्म के आसक्ति पर ॥४७॥

योगस्थःकुरु कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

हे धनंजय । तू आसक्ति त्याग क सुख दुःख के बराबर बुझ क काम कर, फल कि हेतै तेकर चिन्ता छोड़र द ॥४८॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्दियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाःफलहेतवः ॥

तैस हे धनंजय ! समबुद्धि स रक्षा के उपाय ढूंढ ल्या, कि हेतै तेकर चिन्ता छोड़र क अपन काम कर ॥४९॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगःकर्मसु कौशलम् ॥

सफलता । असफलता प्रति समानभाव रखै वाला व्यक्ति पुण्य-पाप येहि लोक मे त्याग क मुक्त भ जाय छय । कर्मबन्धन स मुक्त होई के उपाय ईहे हय ॥५०॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥

समान बुद्धि बाला ज्ञानी काम स प्राप्त होई वाला फल के त्याग क जन्मरुप बन्धन स मुक्त भ जाय छय ॥५१॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतीतरिष्यती ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥

जै समय तोहर बुद्धि मोहरुप दल-दल स ठीक-ठीक स पार क जे त, ओहि समय मे यै लोक परलोक बारे सभे भोग सब स वैराग्य प्राप्त भ जे त ॥५२॥

श्रुतिविप्रतिपन्न ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥

तरह-तरह के बात विचार सुइन क तोहर बुद्धि जब परमात्मा ईश्वर मे अचल, स्थिर भ जे त, तब तू योग के प्राप्त क लेब यानी तोरा परमात्मा स प्रत्यक्ष मिलन भ जे त ॥५३॥

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥

अर्जुन कहलकै - हे केशव । परमात्मा के प्राप्त स्थिर बुद्धिवाला मनुष्य के कि लक्षण हय, केना केना बोलै, बैठे आउर चलै हय ॥५४॥

श्रीभगवानु उवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

श्रीभगवानअर्जुन स कहै हय, जब मानव कामना के सब प्रकार स छोड़इर क आत्मा मात्र मे सन्तुष्ट रहै समय मे स्थित प्रज्ञ कहल जाय हय ॥५५॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाःसुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

दुःख भेला पर भी जेकरा मन मे उद्वेग नै, सुख के समय मे जे सर्वथा निःस्प्रह रहै हय, जेकरा राग, भय, क्रोध नष्ट भ जाई छ, उहे स्थिर विचार वाला मनुष्य जानल जाय छय ॥५६॥

यःसर्वत्रानभिस्नेस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जे मनुस्य लालसा नै करै हय, शुभ/अशुभ समान प्राप्त भेला पर भी न खुशी व्यक्त करै न द्वेष करै हय, ओहने व्यक्ति के बुद्धि स्थिर मानल गेल हय ॥५७॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठता ॥

जेना कछुवा अपना सब अंग के समेट लै हय, तेनाहि जब यी मनुष्य विषय सब स इन्द्रि सब के हटा लै हय, तब ओकर बुद्धि स्थिर मानल जाय हय ॥५८॥

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्टवा निवर्तने ॥

ईन्द्रिय सब स विषय के धारण नै कर वाला मनुस्य त केवल विषय स निवृत होई छय, लेकिन ओकरा मे रह वाला आसक्ती स छुटकारा नै होई छय । कारण स्थितप्रज्ञ मनुस्य के आसक्ति परमात्मा के साक्षात्कार क निवृत भजाय छय ॥५९॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रयाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥

हे अर्जुन । आसक्ति के नास नै भेला पर ईन्द्रि सब, कामना सब बुद्धिमान मनुस्य सब के मन के हरण क लै छय, यानी मन के चंचल बना दै छय ॥६०॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे ही यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

येहि कारण साधक के चाहि सब इन्द्रि सब के अपना वश में राईख क हमर ध्यान पर बैठ जाय, कारण जेकर इन्द्रि सब बस मे रहै छय, ओकरे बुद्धि स्थिर रैह सके छय ॥६१॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्समृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

हे अर्जुन । विषय सब के चिन्तन स आशक्ति, असक्ती स कामना आउर कामना पूरा नै भेला पर क्रोध उत्पन्न होई छय । क्रोध स मूर्खता आउर मुर्खता स संदेह उत्पन्न होइ छय जे ज्ञान, बुद्धि आउर कर्म के हानी पहुँचबै छय ॥६२-६३॥

रागद्धेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियै श्चरन् ।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

किन्तु मन के वश मे रखैवाला साधक, अपनावश मे केल गेल राग, द्वेष स अलग सब इन्द्रि सब स विषय सब मे विचरण करैतो अन्तकरण के प्रसन्नता के प्राप्त करै हय ॥६४॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

अन्तकरण के प्रसन्नता स सब दुःख नाश भ जाइ छय आउर प्रसन्न रहै वाला कर्मयोगी के बुद्धि सब तरफ स हैट क परमात्मा मे लीन भ जाइ छय ॥६५॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतःशान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥

नै जीतवाला मन आउर इन्द्रिवाला मनुस्य मे नै दृढता होई छय आउर भावना । भावना हीन मनुस्य के शान्ति नै मिलै छय आउर शान्तिहीन मनुस्य के सुख मोक्ष केना के मिलतै विचारणीय हय ॥६६॥

इन्दियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधियते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥

जेना जल मे चलै वाली नाव के हवा कंपवै रहे हय, तेनाही विषय सब मे डुबल मन जै इन्द्रि सब स प्राप्त सुख मे डुईब जाई छय, उ एकेटा इन्द्रि वै विवेक हीन व्यक्ति के बुद्धि हैर क ल जाय छय ॥६७॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञा प्रतिष्ठता ॥

अहि द्वारे हे महाबाहो । जै मनुस्य के मन, इन्द्रि सब विषय सब स पूरा तरह स वश मे केल गेल हय ओकरे बुद्धि स्थिर रहै छय ॥६८॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

सब प्राणी सब के लेल जे राईत के समान छय वै नित्य ज्ञानस्वरुप परमानन्द के प्राप्त स्थितप्रज्ञ योगी के लेल दिन होइ छय, आउर जै नाशवान संसारिक सुख प्राप्त के लेल सब जीवजन्तु जागे हय, परमात्मा के तत्व के जनै वाला महात्मा के लेल उ राईत के समान होइ छय ॥६९॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं-
समुद्रमापःप्रविशन्तियद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥

सब नदी सब के जल गिरला पर भी समुद्र स्थिर रहै छय ठिक ओनाही भोग आउर कर्म स्थितप्रज्ञ मनुस्य मे कोनो प्रकार के विकार उत्पन्न होई स पहिले समा जाइ छय। उहे मनुस्य परम शान्ति के प्राप्तहोइ छय, भोग सब के चाहै वाला नै ॥७०॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तमधिगच्छति ॥

जे मनुस्य सब कामना सब के त्याग क, ममता स दूर, अहंकार स दूर आउर इच्छा या कामना स दूर रैह क अपना जीवन यापन करै छय, ओकरे शान्ति प्राप्त होई छय ॥७१॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छिति ॥

हे अर्जुन! यी ब्रह्म के प्राप्त भेल मनुस्य के स्थिति छय, यै के प्राप्त केला पर योगी कहियो मोहित नै होइ छय आउर अन्त काल तक यहि ब्राह्मी स्थित मे भ क ब्रह्मानन्द मे लीन भ जाई छय ॥७२॥

ऊँ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगे नाम द्वितियोऽध्यायः ॥२॥

अध्याय-३
अथ तृतीयोऽध्याय :
अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥

अर्जुन कहलकै-हे जनार्दन । जदि कर्म स ज्ञान वडा हय तब फेरो हमरा कर्म मे कै ल्या लगबै छ ॥१॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥

अपने के यी बात हमरा भ्रमित क रहल हय, तै स कल्याण होई बाला निश्चित रास्ता बताउ ॥२॥

श्री भगवानुवाच

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥

श्री भगवानकहै छै - हे निष्पाप अर्जुन । यै लोक मे साधन के दुगो परिपक्व अवस्था अर्थात् निष्ठा सब हय । ज्ञानी-ज्ञानयोग स, योगी कर्मयोग स येकरा पबै हय ॥३॥

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥

तैयो कर्म करनाई आवश्यक हय, कारण कर्म के त्याईग क यै मे स कुनो प्राप्त नै क जा सके छय ॥४॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशःकर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

कुनो भी मानव क्षण मात्र के लेल भी कर्म करे विना नै रैह सकै छय कारण सब प्राणी प्रकृति स कर्म के लेल बाध्य हय ॥५॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥
यस्त्विद्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेद्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥

जे मानव सब इन्द्रि सब के हठपूर्वक काम करै स रोक क मन मे विषय सब क चिन्तन करैत रहै हय, उ सब झूठ बोलै बाला हय, लेकिन जे मानव इन्द्रि सब के वश मे राईख क अनासक्त कर्मयोग के आचरण करै हय, वेहे श्रेष्ठ हय ॥६-७॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ॥

तै स तू शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म कर, कारण कर्म नै करै स कर्म करनाई बढका बात हयासाथे कर्म नै केला स शरीर के निर्वाहो नै हेते ॥८॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचार ॥

जै प्रकार स यज्ञ भगवान के निमित होई छय, तेनाहीआसक्ति स दूर रैह क सही तरिका स कर्तव्य कर्म करनाई तोहर धर्म हय ॥९॥

सहयज्ञाःप्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रज्ञापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

सृष्टि के शुरु मे यज्ञ आउर मानव के बना क ब्रह्माजी कहलकै तु सव यज्ञ के माध्यम स वृद्धि के प्राप्त हे ब ॥१०॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तःश्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

तु सब यज्ञ स देवता सब के आउर देवता तोरा सब के सन्तुष्ट कर त । यै प्रकार स एक दोसर के तरक्कि करैत तु परम कल्याण प्राप्त कर ब ॥११॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंङ्क्ते स्तेन एव सः ॥
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

यज्ञ स तृप्त भेल देवता नहीयो मंग्ला पर इच्छा अनुसार के भोग दैत रह तै। जदि देवता सब स देल गेल भोग सब के यज्ञ नै क क भोगै छै उ भोगै वाला चोरे हय । यज्ञ स बचलाहा अन्न के खाईवाला महान मानव

सब, सब पाप सब स मुक्त भ जाई छय । यदि जे केवल अपने लेल भोजन पकावै छय । उ त पापे के खाई छय ॥१२-१३॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जनयो यज्ञःकर्मसमुद्भवः ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

सब जीवजन्तु अन्न स उत्पन्न होइ छय । अन्न के उत्पति वर्षा स, वर्षा यज्ञ स आउर यज्ञ विहित कर्म सब स उत्पन्न होइ छय । ताहि स तू कर्म के वेद स आउर वेद के अविनाशी नाश नै होइ वाला परमात्मा स उत्पन्न भेल बुझ। सब जगह व्याप्त रहैबाला परमात्मा, हर समय यज्ञ मे प्रतिष्ठित रहै छय ॥१४-१५॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥

हे पार्थ । जे मानव सृष्टि चक्र के अनुसार नै चैल क अपना कर्तव्य के पालन नै करै छय । उ सब भोग विलास मे रमण करै वाला पापी वेकार के जीवन जीयै छय ॥१६॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषू कश्चिचदर्थव्यपाश्रयः ॥

पर जे मानव आत्मा मे मात्र रमण करै वाला, आत्मा मे तृप्त सन्तुष्ट रहे हय, ओकरा लेल कुनो कर्तव्य केनाई जरुरी नै हय, वै मानव के यै संसार मे कर्म के करनाई नै करनाई कुनो प्रयोजन नही रैह जाई छय साथे सम्पूर्ण प्राणी सब स ओकरा स्वार्थ के सम्बन्ध सेहो नै रैह जाइ छय ॥१७-१८॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचार ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः ॥
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥

ताहि द्वारे तु आसक्ति से दुर रैह क अपन काम कर्तव्य करैत र ह, कारण आसक्ति स दूर रैह क काम करै वाला मानव परमात्मा के प्राप्त भ जाई छय । जनक आउर ज्ञानी मानव सब आसक्ति स दूर रैह क अपना काम कर्तव्य स परम सिद्धि प्राप्त केने छेलै । तहि स तोरो अपन काम कर्तव्य करनाई उचित ह ॥१९-२०॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

महा मानव जे जे आचरण करै छय आउरो मानव सब ओहने आचरण करै छय । उ सब जे कुछो प्रमाणित सिद्ध क दै छय,सब के सब मानव सब ओकरे अनुकरण कर लगै छय ॥२१॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषुलोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मणयतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

हे अर्जुन- हमरा यै तीन लोक मे नै त कुछो कर्तव्य हय आउर नै कोइ चिज के अभाव हय, तैयो हम अपना काम कर्तव्य करै छी । नै करवै त बढका हानी-नुक्सान भ जे तै कारण सब के सब हमरे काम के अनुसरण करै छय ॥२२-२३॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यःमिमाः प्रजाः ॥

तै स जदि हम कर्म नै करै छी तब सब मानव सब नष्ट-भ्रष्ट भ जेतै, जेकर कारण दोषी हमरा बन पर त ॥२४॥

सक्ताःकर्मणयविद्वांसो यथाकुर्वन्तिभारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥
न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥

हे भारत - कर्म स आसक्त अज्ञानी मानव सब जै तरह स कर्म करै हय, आसक्ति स दूर रह वाला विद्वान सब के भी वैहि तरह स कर्म करना चाहि । ज्ञानी सब के कर्तव्य छय कि खुद शास्त्र सम्मत सब काम काज

कर्तव्य करैत रहि, दोसर आउर सब के सेहो ओही तरह स काम कर्तव्य करबैत रहि ॥२५-२६॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

वास्तव मे सब कर्म प्रकृति स केल जाई छय तैयो जेकरा अन्तकरण अहंकार स मोहित प्रभावित हय, येहन अज्ञानी हमही कर्ता छी, जेना माईन रहल छय ॥२७॥

तत्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा म सज्जते ॥

परन्तु हे अर्जुन गुणविभाग आउर कर्मविभाग के तत्व जनै वाला ज्ञानी सब चारो तरफ गुणे गुण देख रहल छय समैभ्क क, ओकरा सव मे आसक्त पैदा नै होइ छय ॥२८॥

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥

प्रकृति के गुण सब स प्रभावित मानव सब मात्र कर्म स आसक्त रहै छय, वै कमबुद्धि मन्दबुद्धि नै जनै वाला सब के जनै वाला ज्ञानी विचलित नै करतै ॥२९॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥

हे अर्जुन! हमरा जेका अन्तर्यामी परमात्मा मे मन लगा क आउर सब कर्म सब के हमरा मे अर्पण क क आसक्ति, ममता, आउर सन्ताप स दूर रैह क तु अपन-काम कर्तव्य अर्थात् युद्ध कर ॥३०॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥

कारण जे मानव दोष दृष्टि स अलग आउर श्रद्धा स पूर्ण भ क हमर यै विचार के सदैव मनन्न करै छय, उहो सब कर्म सब स छुटकारा पाईब लै छय ॥३१॥

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥

यदि जे मानव हमरा के दोषा रोपण करैत हमर यै विचार स नै चलतै। ओई मुर्ख के तू अज्ञानी आउर नष्ट भेल नासमझ बु झ ॥३२॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याःप्रकृतेर्ज्ञानवानपि॥
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिनष्यति ॥

सब जीवप्राणी प्रकृति स वशीभूत भ क अपन कर्म कार्य क रहल हय। ज्ञानीपुरुष सेहो अपन अपन प्रकृति अनुसार चेस्टा रखै छय, तब यै पर केकरो हठ कि क सके छय ॥३३॥

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेतौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥

सब इन्द्रिय के बिषय मे राग आउर द्वेष छिपल रहै छय, मानव के येकरा वश मे नै रह चाहि, कारण यी दुनु कल्याण मार्ग के बाधक हय ॥३४॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

हे अर्जुन। दोसर के उत्तम धर्म स अपन गुणहीन धर्म अधिक उत्तम होई हय, अपना धर्म मे त मरनाई भी कल्याण कारक होई छय, जब कि दोसर के धर्म भय दै वाला होइ छय ॥३५॥

अर्जुनउवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥

अर्जुन कहलकै - हे माधव! तब मानव खुद नै चाहितो केकरा स प्रभावित भ क पाप के आचरण करै छय ॥३६॥

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

भगवान कहै छै अर्जुन स - रजोगुण स उत्पन्न काम आउर क्रोध भोग सब स कहियो नै पूरा होई बाला हय, तै स तू एकरा दुश्मन मा न ॥३७॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥

जै प्रकार धुवां स आईग आउर मैल स ऐना ढैक क नही देखाई छय, तेनाही काम स ज्ञान नै देखाई छय ॥३८॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरुपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥

यी काम रुपवाला आईग कहियो तृप्त नै हेते आउर ज्ञान के उपर आवरण डायल क रहै छय ॥३९॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥

इन्द्रि-सब, मन आउर बुद्धि - यी सब येकर बास स्थान हय, येही माध्यम स कामज्ञान के आच्छादित क क जीवआत्मा के मोह मे रखै छय ॥४०॥

तस्मात्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षम् ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशयम् ॥

तैय द्वारे हे अर्जुन तु सब से पहिले इन्द्रि सब के अपना वश मे क क यै ज्ञान आउर विज्ञान के नाश करै वाला महान पापी काम के निश्चय बलपूर्वक माईर दे ॥४१॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥

स्थूल शरीर स इन्द्रिय सब, इन्द्रिय सब स मन आउर मन स बुद्धि बहुत छोट हय, तैयो आत्मा यै सबसे सूक्ष्म छोट होइतो सब स श्रेष्ठ आउर बलवान हय ॥४२॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरुपं दुरासदम् ॥

यै प्रकार स सब से छोटका (सुक्ष्म), बलवान आउर अत्यन्त श्रेष्ठ आत्मा के जाइन क आउर बुद्धि के माध्यम स मन के वश मे क क, तू यै कामरुप दुर्जय शत्रु के माइर दे ॥४३॥

ऊँ तत्सदितिश्रीभदभगवदगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री
कृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अध्याय-४

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

श्री भगवानअर्जुन स कहै छै - हम यै अविनाशी योग के सूर्य स कहने रही, सूर्य अपना बेटा वैवस्वत मनु स कहल के आउर मनु अपना बेटा राजा इक्ष्वाकु स कहल कै ॥१॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥

हे अर्जुन । यै प्रकार स परम्परा स प्राप्त यै योग के राजा सब जनल कै, तैयो एकर बाद बहुत समय स यी पृथ्वी लोक मे उ लुप्त प्राय रहलै ॥२॥

स एवायं मया तेऽद्य योगःप्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्योतदुत्तमम् ॥

तू हमर भक्त आउर प्रिय संगी छ, तै स उ पुरातन योग आय हम तोरा कहलिय । यी वडा उत्तम आउर गोप्य रखै वाला विषय हय ॥३॥

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥

अर्जुन पुछै छय भगवान् स, अपने के जन्म त अब भेल सूर्य के जन्मकल्प के शुरुवात मे भ चुकल छेलै । तब लाखो वर्ष पहिले सूर्य स यी योग केना कहने रही ॥४॥

श्री भगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानी जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परम्तप ॥

श्री भगवान कहै छय अर्जुन स । हमर तोहर जनम बहुत बेर भ चुकल छय । वै सब के तु नै जनबह हम मात्र जनै छियै ॥५॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्माभूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥

हम अजन्मा, अविनाशी आउर भगवान होइतो समय-समय पर अपना प्रकृति के अधिन क क अपना योगमाया स प्रकट होई छी ॥६॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

हे अर्जुन ! जब जब धर्म के हानी आउर अधर्म के बृद्धि होई हय तब-तब हम साकार रुप मे मानव जाती सम्मुख प्रकट भ जाई छी ॥७॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे ।

साधु सब के उद्धार कर, पापि सब के विनाश कर के लेल आउर धर्म के बहुत निमन स स्थापना के लेल हम युग युग मे प्रकट होइते रहै छी ॥८॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेति तत्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

हे अर्जुन हमर अवतार आउर कर्म दिव्य, निर्मल आउर अलौकिक हय, जे हमरा जाइन लै छय ओकरा मरलो के वाद पुनःजन्म नै होई छय हमरे मे समाहित भ जाइ छय ॥९॥

वीतारागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भवमागताः ॥

जेकर राग, भय, क्रोध सब नष्ट भगेल छलै आउर जे हमरा मे अनन्य प्रेम पूर्वक समाहित भ गेल छेल येहन बहुत भक्त सब ज्ञानरुप स पवित्र भ क हमर स्वरुप के प्राप्त भ चुकल छय ॥१०॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याःपार्थ सर्वशः ॥

हे अर्जुन - जे भक्त हमरा जेना भजै छय, हमओकरा वही तरह स फल दै छियै । सब मानव हमरे रास्ता के अनुसरण करै छय ॥११॥

काङ्क्षन्तःकर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥

यै लोक मे कर्म के फल के चाहै वाला देवता सब के पूजन करै छय; कारण यै कर्म स उत्पन्न होई वाला सिद्धि तुरन्त मिल जाई छय ॥१२॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आउर शुद्र यै चार वर्ण के गुणआउर कर्म के आधार पर हमही रचलीयै, तैयो सृष्टि रचना कर्ता होईतो हम अविनाशी परेश्वर के तु वास्तव मे अकर्तो ही जान ॥१३॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इतिं मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥

कर्म करला पर सेहो हमरा फल के चाह नै छय तै स कर्म हमरा बन्धन मे नै बांईन्ह सके छय । यै प्रकार जे मानव हमरा तत्व स जाईन लै छय, उहो कर्म सब स नै बन्हतै ॥१४॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥

पूर्वकाल मे पूर्वज सब (मुमुक्षुओं) येनाही जाइने क कर्म केने रहै । तै स तू अपना पूर्वज सब स पहिले स केल गेल कर्म सब तूहों कर ॥१५॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यञ्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥

कर्म कि हय आउर अकर्म कि हय? येकरा निर्णय करै मे बुद्धिमानो भ्रमित भ जाई छय, तै द्वारे उ कर्म त्तत्व हम तोरा सरल तरिका समझा क कहबौ, जै के जाइन क तू कर्म बन्धन स मुक्त भ जेबे ॥१६॥

कर्मणे ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

कर्म के जननाई जरुरी आउर अकर्म/विकर्म के सेहो जननाई जरुरी हय, कारण कर्म के गति कठीन (गहन) हय ॥१७॥

कर्मण्यकर्म यःपश्येदकर्माणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥

जे मानव कर्म मे अकर्म आउर अकर्म मे कर्म देखै छय, उ बुद्धिमान हय आउर कर्म केरैतो योगी हय ॥१८॥

यस्य सर्व समारम्भाःकामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुःपण्डितं बुधाः ॥
त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।

कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्जत्करोति सः ॥

जेकर सम्पूर्ण कर्म कामना रहित होई हय आउर जेकर विकार ज्ञानरुप आईग स डैह गेल हय, ओकरा ज्ञानी जन पण्डित कहै छय, जे मानव काम करतो फल के इच्छ्ा नै रखै छय संसार के मोह के त्याग क परमात्मा मे लिन भेला पर, उ मानव कर्म करतो निष्काम हय ॥१९-२०॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शरीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम् ॥

जेकर अन्तःकरण शुद्ध छय, जे इन्द्रि सब के जीत गेल हय, एहन कामना स दूर रहे वाला लौकिक मानव कर्म कैरतो पाप के प्राप्त नै होई छय ॥२१॥

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समःसिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥

जे अपने आप प्राप्त स सदैव सन्तुष्ट रहै छय जेकरा ईर्ष्या आउर द्वेष नहि हय, जे दुःख सुख दोनो अवस्था मे समान रुप स रहै हय, येहन सिद्धि/असिद्धि में समान रुप स रहै वाला कर्म योगी कर्म करतो बन्धन स मुक्त रहै छय ॥२२॥

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतःकर्म समग्रं प्रविलीयते ॥

जेकर असक्ति सब तरह स नष्ट भ गेल हय, जे घमण्ड आउर ममता स दूर रहै हय, जेकर चित लगातार परमात्मा के ज्ञान मे स्थित रहै हय, येहन मानव कर्म करैतो निष्काम कहल जाई छय ॥२३॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥

तत्व चिंतक जनै छै कि, यज्ञ मे प्रयुक्त पात्र, हवन सामग्री, आईग आउर यज्ञकर्ता सब ब्रह्म के स्वरुप हय, उ जनै छय जे ब्रह्म स, ब्रह्म के माध्यम स, ब्रह्म के लेल यज्ञ क रहल छय। ऐहन योगी अन्त मे ब्रह्मे मे लीन भ जाय छय ॥२४॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥

कुनो योगीजन देवता सब के पूजा करै के लेल यज्ञ के अनुष्ठान करै छय। आउर कुनो योगी जन परब्रम्ह परमात्मा रुप आईग मे अभेद दर्शन रुप यज्ञ के माध्यमे स मात्र आत्मरुप यज्ञ (परब्रह्म मे ज्ञान स एकी भाव स स्थित होईवाला भावना के नामे ज्ञान के आईग मे आत्मा के होम हय) के हवन करै छय ॥२५॥

श्रोतादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयान्नय इन्द्रियाग्नुिषु जुह्वति ॥

बहुतो योगीजन सम्पूर्ण इन्द्रिय सब के संयमरुप आईग मे हवन करै छय, आउर कुनो कुनो मानव विषय सब के ईन्द्रियरुप आईग मे हवन करै छय ॥२६॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापेर ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥

दोसर योगीजन सब इन्द्रि सब आउर प्राण सब के सम्पूर्ण क्रिया कलाप के ज्ञान स प्रकाश मय आत्म संयमरुपी आईग मे हवन क लै छय, या प्रत्येक छन हमरे ध्यान करैत रहै छय ॥२७॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥

कोई मानव दान के रुप मे यज्ञ करै छय त कोई तपस्या या योग के रुपमें आउर अनेक मानव सब तीक्ष्ण स्वाध्याय रुप मे ज्ञानयज्ञ सेहो करै छय ॥२८॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वाप्राणायामपरायणाः ॥
अपरे नियताहाराःप्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥

कुनो कुनो योगी सब अपान वायु मे प्राणवायु के वा प्राणवायु मे अपानवायु के हवन करै छय। आउर बहुतो प्राणायाम परायण मानव प्राण आउर अपान के गति के रोईक क प्राणो के प्राणो मे मात्र हवन क लै छय। यी सब साधक यज्ञ सब स पाप सब के नाश करै वाला आउर यज्ञ सब के मर्म के जनै वाला छय ॥२९-३०॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्यकुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥

हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन यज्ञ स बचल अन्न के खाय वाला योगीजन सनातन परब्रह्म के प्राप्त होइ छय । यज्ञ न करैवाला के लेल त यी मनुष्य लोक सेहो सुखदायक नै हय त परलोक केना क सुखदायक भ सकै छय ॥३१॥

एवं बहुविद्या यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥

यै प्रकार स आउर बहुत प्रकार के यज्ञ वेद सब मे कहल गेल छय, वै सब के तु मन, इन्द्रिय आउर शरीर के क्रिया स सम्पन्न होइ वाला बुझ । यै प्रकार तत्व स जाइन क ओकर अनुष्ठान स तु कर्मबन्धन स सब दिन के लेल मुक्त भ जेब ॥३२॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥

हे अर्जुन।धन स साध्य यज्ञ के अपेक्षा ज्ञानयज्ञ उच्च हय, कारण हमरे मे सब कर्म आउर ओकर फल मौजुद हय ॥३३॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥

यै ज्ञान के तु तत्वदर्शी ज्ञानी सब के पास जा क समझ । ओकरा भलिभांति दण्डवत्, प्रणाम, सेवा क क आउर कपट स्वभाव छोईर क सरलता के साथ प्रश्न करै पर, उ ज्ञानी महात्मा तोरा यै तत्वज्ञान के उपदेश कर त ॥३४॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥

जै के जाइन क फेर तू यै प्रकार स भ्रमित नै हेब । ओई ज्ञान स तू सब जीवजन्तु के निःशेष भाव स प्रथम तू अपने मे आउर दोसर हम सच्चिदानन्दघन परमात्मा मे देख ब ॥३५॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यःपापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥

अगर तु दोसर सब पापि सब स सेहो बहुत अधिक पाप करै वाला छ तैयो ज्ञानरुप नाव स निःसदेश सम्पूर्ण पाप रुप समुद्र-सागर स निम्न स पार क जे ब ॥३६॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥

हे अर्जुन । जेना प्रज्वलित आईग इंधन के भस्म क दै छय तेनाही ज्ञान रुप आईग सब कर्म सब के आउर ओकर पाप सब के जला दै छय ॥३७॥

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धःकालेनात्मनि विन्दति ॥

यै संसार मे ज्ञान के समान पवित्र कर वाला कुछो नै । वै ज्ञान के कर्मयोग स शुद्ध हृदय वाला मनुस्य आपने आप आत्मा मे पाईब लै छय ॥३८॥

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रिय ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छिति ॥

जितेन्द्रिय, साधनपरायण आउर श्रद्धावान् मनुस्य ज्ञान के प्राप्त होई छै, जै स उ अविलम्ब परम शान्ति के प्राप्त करै छय ॥३९॥

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥

विवेकहीन, श्रद्धारहित, आउर संशययुक्त मानव परमार्थ नै करै छय । सदैव दुविधा मे रहै वाला येहन मानव के लेल, नै यी लोक छय नै परलोक छय आउर सुखशान्ति सेहो नै छय ॥४०॥

योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥

हे धनंजय । जे कर्मयोग के विधि स समस्त कर्म सब के परमात्मा मे अर्पण क देने छय आउर जे विवेक स समस्त संशयो (शंका) के नाश क लै हय, येहन अन्तःकरण वाला मनुस्य के कर्म नै बाईन्ह सकै छय ॥४१॥

तस्मादज्ञानसम्भूतं हत्स्थं ज्ञानसिनात्मनः ।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥

तै स हे भरतबंशी अर्जुन । तू हृदय मे रहैवाला यै अज्ञान जनित अपन शंका के विवेक ज्ञानरुपी तलवार स छेदन क क समत्वरुप कर्मयोग मे स्थित भ जा अर्थात् युद्ध करै के लेल खडा भ जा, तैयार भ जा ॥४२॥

ऊँ तत्सदितिश्रीभदभगवद्गीतासूषनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्म सन्यासयोगो नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अध्याय-५
अथ पञ्चमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच
सन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यर्च्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥

अर्जुन कहै छय श्री कृष्ण स-अहां कर्म सब के सन्यास के आउर फेरो कर्मयोग के प्रशंसा करै छी । तै स यै दोनो मे से हमरा लेल कुन अधिक कल्याणकारी हे तै से बताउ ॥१॥

श्री भगवानुवाच
सन्यासः कर्मयोश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥

भगवानअर्जुन स कहै छय कर्म संन्यास आउर कर्मयोग यी दुनुयों परम कल्पाणकारी हय, तैयो दुनु मे कर्मयोग साधना मे सुगम होई के कारण अधिक उत्तम हय ॥२॥

ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङक्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥

हे अर्जुन । जे मानव न केकरो स द्वेष करै छय आउर न कुनो आंकक्षा रखै छय, उ कर्मयोगी सदैब संन्यासी समान मान्यवर हय, कारण राग, द्वेष सब दुर्गुण सब स दूर रहै वाला व्यक्ति असान स संसार बन्धन स मुक्त भ जाय छय ॥३॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाःप्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥

संन्यास आउर कर्मयोग के अज्ञानी सब अलग-अलग फल दै वाला कहै छय। ज्ञानी त दुनु के एकै मानै छय कारण दुनु मे स एक पूर्णतय अपना क परमात्मा के प्राप्त करल जा सकै छय ॥४॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं साङ्ख्यं च योगं च यःपश्यति स पश्यति ॥

ज्ञानयोगी सब स जे परमधाम प्राप्त केल जाय छय उहे कर्मयोगी सब सेहो प्राप्त करै हय। तै स वास्तव मे यी दुनु एके हय ॥५॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥

हे अर्जुन - कर्मयोग के बीना संन्यास, तथापि कर्म सब मे कर्ता होनाई भावना के त्याग कठीन हय। लेकिन भगवतस्वरुप के मनन करैवाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्मा के सिध्र सेहो प्राप्त भ जाई छय ॥६॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्व भूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि नः लिप्यते ॥

जेकर मन अपन बश मे हय, जे इन्द्रि सब के जीत लेने हय आउर पूर्ण स्वच्छ अन्त करण वाला हय, येहन कर्मयोगी, कर्म करैतो कर्म मे लिप्त नै होई छय ॥७॥

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्ववित् ।
पश्यञ्श्रृण्वन्स्पृशञ्जि घ्रन्नश्नन्गाच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्ण न्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥

तत्व के जनैवाला सांख्ययोगी त देखै, सुनै, छुयैत, सूंघैत, भोजन करैत चलैत, सुतैत, जगैत अर्थात सब काम कैरतो यी जनै छय कि उ कुनो काम नै क>रहल अनुभूति होई छय। यी सब मात्र त इन्द्रिय सब अपन-अपन काम क रहल छय ॥८-९॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

येहन मानव सब कर्म सब के परमात्मा मे अर्पण क क आउर आसक्ति के त्याग क कर्म करै छय । येहन मनुष्य जल मे पूरैन के पत्ता के तरह पाप स लिप्त नै होई छय ॥१०॥

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनःकर्म कुर्वन्ति सङ्ग त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥

कर्मयोगी ममता स दूर रैह क, आसक्ति छोइर क अन्तःकरण के शुद्धि के लेल सब काम-कर्म करै छय ॥११॥

युक्तःकर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्
आयुक्तःकामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥

कर्म योगी कर्म सब के फल के छोइर क परम शान्ति आउर भगवान के प्राप्त करै छय, जबकि कामना के प्रेरणा स काम करैवाला फल के लेल आसक्त भ क बानहल रहै छय ॥१२॥

सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पूरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥

जै व्यक्ति के मन वश मे छय येहने व्यक्ति सब कामना सब के छोइर क नया द्वार वाला शरीर रुप घर मे रैहतो ओकर आत्मा परमात्मा के स्वरुप मे लीन रहै छय ॥१३॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥

इश्वर केकरो कर्म, कर्तव्य आउर कर्मफल के रचना नै करै छय उ त केवल येकर प्रायोजक हय ॥१४॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

सर्वव्यापी होईतो परमेश्वरर केकरो पाप/पुण्यकर्म सब के ग्रहण नै करै छय । परन्तु अज्ञानवश मनुस्य ऐना समभै हय ॥१५॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥

परन्तु जेकर अज्ञानता परमात्मा के तत्वज्ञान स हैट गेल हय ओकर उ ज्ञान सूर्य के सदृश्य वै सच्चिदानन्दघन परमात्मा के प्रकाशित क दै हय ॥१६॥

तद्‌बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्ध तकल्मषाः॥

जेकर मन, बुद्धि आउर आत्मा स परमात्मामे अटल छय, येहने ज्ञानी सब पाप स दुर रैह क परमगति के प्राप्त होइ छय ॥१६॥

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

उ ज्ञानीजन विद्या आउर विनययुक्त ब्राह्मण तथा गाई, हाथी, कुत्ता आउर चण्डाँल सब के एक भाव स देखै छय उ वास्तव मे परम ज्ञानी हय ॥१८॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्मा तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥

जेकर मन समभाव मे स्थित छय, ओकरा स यै जीवित अवस्था मे सेहो सम्पूर्ण संसार जीत लेल गेल हय । ताहि स ओकरा सचिदानन्दघन परमात्मा मे स्थित मान ॥१९॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥

जे खुश के पाईब क खुशी आउर दुःख के पाईब क दुःखी नै होई हय, वही स्थिरबुद्धि, शंसय स दूर ब्रह्मवेता आदमी परब्रह्म् परमात्मा मे एक भाव स नित्य स्थित छय ॥२०॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तत्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥

वि खा खा खा लो खा खाषय सब पर आसक्ति स दूर रहवाला आत्मा मे स्थित ध्यानजनित सात्विक आनन्द प्राप्त करैत रहै छय आउर यै प्रकार स उ सच्यिदानन्द परमात्मा के ध्यान मे अभिन्नभाव स स्थित रहैत अक्षय आनन्द के अनुभव करै छय ॥२१॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥

इन्द्रिय सब तथा विषय सब के संयोग स उत्पन्न होई वाला सब भोग यद्यपि विषयी पुरुष सब के सुखरुप सोभै हय, तैयो दुःखे के लेल हय। तै स हे अर्जुन ! बुद्धिमान विवेकी मनुस्य वै मे नै रमण करै हय ॥२२॥

शाक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥

जे साधक काम क्रोध स उत्पन्न होईवाला वेग के सहन करै मे समर्थ भ जाईत छय, वेहे मनुस्य योगी छय आउर खुशी रहै छय ॥२३॥

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्थान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रम्हभूतोऽधिगच्छति ॥

जे पुरुष अन्तरात्मा मे सुखवाला, आत्मा मे रमण करै वाला आउर जे आत्मा मे ज्ञानवाला छय। उ सचिदानन्दघन परब्रह्म के साथ एकीभाव के प्राप्त क ब्रह्म के प्राप्त भ जाई छय ॥२४॥

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयःक्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥

जेकर सब पाप नष्ट भ गेल हय, आउर संशय समाप्त भगेल हय, जे सब प्राणियो के भलाई मे लीन हय, आउर जेकर मन निश्चलभाव स परमात्मा मे लिन हय, उहे ब्रह्मवेता पुरुष ब्रह्म के प्राप्त होई छय ॥२५॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥

काम क्रोध स दूर, मन के जीतै वाला आत्माज्ञानी सेहो सब तरफ स शान्ति आउर परमात्मा के प्राप्त होई छय ॥२६॥

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
पाणापानौ सभौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥
यतेन्द्रियमनो बुद्धिर्मुनिनिर्मो क्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥

बाहरी विषय भोग सब के त्याग क, आँईख के दृष्टि के भृकुटि के मध्य मे स्थित क क, नासिका मे विचरण करैवाला प्राण आउर अपान वायु के बराबर क क इन्द्रियो, मन, बुद्धि के जीत क अर्थात् योग करैत परमात्मा

के चिन्तन करै वाला मननशिल व्यक्ति इच्छा, भय, क्रोध स दूर होई छय । अतः उ सदैव मुक्ते छय ॥२७-२८॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्व भूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

हमर भक्त हमरे सब यज्ञ सबआउर तप सब के भोगै वाला सभिटा लोक सब के ईश्वर, स्वार्थ स दूर, दयालु, प्रेमी एहन तत्व स जाईन क शान्ति के प्राप्त होई छय ॥२९॥

ॐ तत्सदिति श्रीभद्भगवदगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुनसंवादे कर्मसन्यासयोगो नामपञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अध्याय-६
अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच
अनाश्रितःकर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥

श्री भगवान कहलकै - जे मानव कर्मफल के इच्छा छोइर क करै वाला योग्य काम करै हय, उहे सन्यासी व योगी हय । संसारिक काम काज के त्याग क दै बाला सेहो सन्यासी वा योगी नै हय ॥१॥

यं सन्न्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसन्न्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन ॥

हो अर्जुन ! जेकरा कोई मानव संन्यास कहै छय, ओकरे तु योग बुझ, कारण संकल्प सब के त्याग नै करबाला कुनो मानव योगी नै भ सकै छय ॥२॥

आरुरु क्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारुढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥

योग स आरुढ होई बाला मननशील मानव के लेल निष्काम भाव स कर्म केनाई सही हय । यै में सब संकल्प के जे कमी हय, ओकरे योग कहल जाय छय ॥३॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।

सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारुढस्तदोच्यते ॥

जै समय मे मानव न त इन्द्रिय सब के बस मे रहे या नै त कर्म सब मे सेहो आसक्त रहै हय, वही अबधि मे सब संकल्प सब के त्याग करै बाला मानव योगरुढ कहल जाई हय ॥४॥

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

अपने स अपन उद्धार कर, आउर खुद के अधोगति तरफ नै फसा ब, कारण यीहे मानव खुद अपन दोस्त हय आउर खुद अपन दुश्मन सेहो ॥५॥

बन्धुरात्मात्मस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥

जे मन आउर इन्द्रि सब के जीत लेने हय,उ खुद अपन दोस्त हय, लेकिन जे येकर दास हय, उ खुद अपन आत्मा के दुश्मन हय ॥६॥

जितात्मनःप्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥

सर्दी-गर्मी, सुख दुःख या मान-अपमान सब स्थिति मे जेकर अन्तकरण के वृत्ति सब एक समान रहै हय, येहने स्वच्छ आत्मा वाला मानव के हृदय मे परमात्मा के सिवाय आउर कुछ हैयो नै ॥७॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कुटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्जनः ॥

जेकर अन्तःकरण ज्ञान विज्ञान स पूरल हय या दोषमुक्त हय, जेकर इन्द्रि सब, सब प्रकार स जीत लेने हय आउर अपन काबू मे हय, जेकरा लेल माईट आउर सोना समान हय उहे जोगी भगवान के प्राप्त हय ॥८॥

सुहृन्मित्रार्यु दासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

स्वार्थ-पक्षपात नै करवाला तथा सबके भलाई करै वाला या सब मे समान भाव रखै वाला सेहो श्रेष्ठ जोगी हय ॥९॥

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥

इन्द्रि सब, मन शरीर के वश मे रखै वाला, इच्छा, आशा, संग्रह के त्याग क आत्मा के सदैव परमात्मा मे लगबै वाला मात्रे योगी हय ॥१०॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाय स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥

शुद्ध माइट स निपल जगह जै पर क्रमशःकुश, मृगछाला या तन्ना विछाउल आशन पर बैठ क मन, इन्द्रिय सब के वश मे रखैत मन के एकचित क अन्तःकरण के शुद्ध के लेल योग के अभ्यास कर ॥११-१२॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्तिरः ।
सम्प्रेक्षय नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥

काया, सिर, आउर गला, के सीधा या असथिर क क आउर असथिर भ क, अपन नाभी के अगारी दृष्टी राईख क, नै डरा क, बढीया स शान्त अन्तःकरण वाला सचेत योगी मन के रोईक क हमरे मे चितलगा क हमरे में लीन भ क योग कर ॥१३-१४॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥

यै प्रकार स जे जोगी आत्मा के सदैव हम परमेश्वर के स्वरुप मे लगा क रखै हय, उ हमरा जेका मोक्षरुपी शान्ति के प्राप्त करै हय ॥१५॥

नात्यश्नतस्तु योगाऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

यी योग नै त बेशी खायवाला के, नै साफे नै खायवाला के, नै बेशी सुतैवाला के आउर नै सदैव जगैवाला के सिद्ध होई छय ॥१६॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

दुःख सब के नाश कर वाला योग त यथा योग्य अहार-विहार, कर्म सब मे यथायोग्य चेष्टा आउर यथायोग्य सुतै-जागै बाला के हि सिद्ध होई छय ॥१७॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥

वश मे भेल मन जै समय परमात्मा मे बढीया स लीन रहै छय, वै समय मे सब भोग विलास के लालसा नै कर वाला उ मानव योग स पूर्ण हय, जेना कहल गेल आउर मानल गेल हय ॥१८॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥

जै प्रकार स हवा चलवाला स्थान पर दीया चलायमान नै होई हय, वोहने स्थिति मे परमात्मा के ध्यान मे लागल योगी के मन के कहल गेल हय ॥१९॥

यत्रोपरमते चितं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मनं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥

योग अभ्यास स रोकलाहा मन परमात्मा के ध्यान स शुद्ध भेल बुद्धि स परमात्मा के साक्षात देखैत परमात्मा मे मात्रे सन्तुष्ट रहै हय ॥२०॥

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः ॥

शुद्ध भेल शुक्ष्म मन स ग्रहण कर जोग जे बहुत शुखमय आनन्द हय, वै दिव्य आनन्द के प्राप्त योगी परमात्मा के रुप स कहियो विचलित नै हेतै ॥२१॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥

उहे परमात्मा के प्राप्त करै हय, आउर येकरे सब स वडा लाभ मानै हय। यै अवस्था मे स्थित योगी बढका स बढका दुःख स सेहो विचलित नै होई छय ॥२२॥

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥

योग संसार के सुख के साधन हय तै द्धारे येकरा जाईन लेनाई धैर्य य उत्साहपूर्वह सदैव कर चाहि ॥२३॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्धया घृतिगृहीतया ।
आत्संस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥

सब कामना सब के पूर्ण रुप स त्याईग क, मन स इन्द्रिय सब के पूर्णरुप स सब तरफ स रोईक क क्रम स अभ्यास क क विषय सब के त्याइग क धैर्य स बुद्धि मार्फत मन के परमात्म मे स्थिर क क परमात्मा के चिन्तन कर ॥२४-२५॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

यी चंचल मन जै-जै विषय के लेल विश्व संसार मे घुईम रहल छय, उ सब स हटा क यै के बार-बार परमात्मा मात्र मे लग ब ॥२६॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥

जेकर मन काम क्रोध, रजोगुण स पूर्ण शान्त आउर पाप स मुक्त हय, वै योगी के सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के साथ पूर्णरुप स उत्तम आनन्द प्राप्त होई हय ॥२७॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥

उ पाप स मुक्त योगी यै प्रकार सदैब आत्मा के परमात्मा मे लगा क शान्ति पूर्वक सुख पूर्वक परब्रह्म परमात्मा के प्राप्ति के अनन्त आनन्द के महसूस करै हय ॥२८॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

सब जगह अनन्त चेतन मे एकीभाव स स्थिति योग स पूर्ण आत्मावाला आउर सब मे बराबर देखैबाला योगी खुद के सबमें आउर सब के खुद मे देखै छय ॥२९॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

जे मानव सभेटा जीबन सब मे हम वासुदेवे के मात्र सब ओर देखै छय, आउर पूरे जगत के हम बासुदेवेअ मे देखै हय, ओकरा ले हम अदृश्य नै आउर हमरा लेल उ अदृश्य नै होई छय ॥३०॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥

जे मानव एकभाव मे स्थित भ क सभेटा जीब के आत्मा मे स्थित रैहवाला हम सच्चिदानन्द वासुदेव के जपै हय, उ योगी हर तरह हमर स्वरुप हय ॥३१॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

हे अर्जुन जे सबके सुख दुःख के अपन सुख दुःख मानै छै उ जोगी परम श्रेष्ठ मानल गेले हय ॥३२॥

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तःसाम्येन मधुसूदन ।
एतस्यांह न पश्च्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥

अर्जुन कहलकै हे मधुसूदन! जे सबके अपने बराबर देखै के यी जोग आंहा बतौली, मन के चंचल भेला स यी बहुत समय तक स्थिर नै रहै हय ॥३३॥

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्थाहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

यी मन अधिक चंचल, अजेय, एकदम दृढ, बलवान होई के कारण येकरा वश मे रखनाई हम हवा के रोकनाई जे का अत्यन्त कठीन मानै छी ॥३४॥

श्री भगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

भगवान कहलकै - हे अर्जुन ! कुनो शंका नै मन खुब चंचल या कठीनता स बस मे होइबाला हय तैयो अभ्यास आउर वैराग्य स यी वश मे भ जाई छय ॥३५॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥

जेकर मन अपना वश मे नै हय, येहन मानव स योग केनाई कठीन लेकिन जेकर मन वश मे छय उ साधना स योग के पाईव सकै छय ॥३६॥

अर्जुन उवाच

अयतिःश्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगंससिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥

अर्जुन अनुरोध करै हय हे भगवान!जे योग मे विस्वास रखै हय, पर संयमी नै हय, जेकर मन अन्त मे योग स विचलित भ जाई हय येहन साधक योग सिद्धि के प्राप्त न भ क कुन गति के प्राप्त करै हय ॥३७॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्राह्मणःपथि ॥

हे महाबाहो अर्जुन ! की उ भगवान के प्राप्त कर बाला रास्ता स भटैक क आश्रय स दूर मानव बादल जेका छिन-भिन भ क दुनु तरफ स भ्रष्ट भ क नाश त नै भ जेतै ॥३८॥

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ।

अर्जुन कहै छै हे भगवानश्री कृष्ण ! हमर यै शंका के पूर्णरुप स दूर कर वाला अहां खुद सक्षम छी, किया कि अहां सिवा दोसर यै शंका के दूर कर बाला मिलनाई संभव नै हय ॥३९॥

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिदद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥

श्री भगवान कहलकै - हे पार्थ ! वै मानव के नै त यै संसार मे नाशहोई छय नै परलोके में सेहो कारण आत्मा के उद्धार आउर भगवान के प्राप्त कर लेल कर्मकरै बाला कुनो मानव खराब गति के प्राप्त नै भ सकै छय ॥४०॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥

योग नपाक मानव सेहो स्वर्ग स उत्तम लोक सब मे वर्षो वर्ष तक रैह क फेरो शुद्ध आचरण वाला कुलीन घर मे जन्म लै हय ॥४१॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतारं लोके जन्म यदीदृशम् ॥

या वैराग्यवान् मानव वै लोकसब मे नै जा क ज्ञानवान् योगीसब के कुल मे जनम लै छय, लेकिन यै प्रकार के यी जनम संसार मे बहुत कठीन, दुर्लभ हय ॥४२॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥

वै ठाम उ पहिलाका शरीर के समान्य बुद्धिरुप योग के संस्कार सब स अनायास प्राप्त करै हय, आउर फेरो परमात्मा के प्राप्त करे लेल पहिलो स अधिक प्रयत्न करै हय पर॥४३॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥

उ उत्तम मानव के घर मे जन्म लै बाला योगभ्रष्ट मानव पछुलका जन्म के पुण्य स मात्रे भगवान तरफ आकर्षण होई हय, यै प्रकार बराबर विचारवाला योग के जनै के इच्छा रखैवाला सु-कामकर्म के फल स सेहो ज्यादा पबै हय ॥४४॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

प्रायःप्रयत्नपूर्वक अभ्यास कर वाला योगी त पछुलका जनम के संस्कार के बल स यै जनम मे सब प्रकार के पाप सब स छुटकारा पा क परमगति के प्राप्त भ जाय छय ॥४५॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चयाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

योगी तपस्या करै वाला स श्रेष्ठ हय, शास्त्र ज्ञानि सब स आउर सुन्दर कर्म करैवाला स बैढ क योगी महान हय, तै स तु योगी बैन जा ॥४६॥

योगीनामपि सर्वेषां मद्गनेतान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

हे अर्जुन! योगी सब मे प्राय: जे श्रद्धावान योगी अन्तरात्मा स हमरा सदैव भजै हय, उ हमर परम श्रेष्ठ मान योग हय ॥४७॥

ॐ तत्सदितिश्रीभदभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्याय: ॥६॥

अध्याय -७

अथ सप्तमोऽध्याय:

श्री भगवानुवाच

मय्यासक्तमना: पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रय: ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

श्री भगवान कहलकै - अर्जुन स हे पार्थ ! अनन्य प्रेम भाव स हमरा आसक्तचित तथा एकानिष्ट भाव स हमरा प्रति पूर्ण परायण भ क जै तरह तु सब विभूति, बल, एश्वर्य सब गुण स युक्त, सब आत्म स्वरुप हमरे जनबे, ओकरा सुईन ले॥१॥

ज्ञान तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषत: ।
यञ्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यञ्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

हम-तोरा लेल यै तत्वज्ञान के कैह रहली, जेकरा जाईन क फेरो कुछहो जनैवाला बाँकी नै रैह जेतै ॥२॥

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वत: ॥

एक हजार मानव मे स कोई एक हमरा प्राप्त के लेल प्रयास करै हय, आउर ओई प्रयास करै वाला हजार मध्ये कुनो एक हमरा प्रति पूर्ण भक्ति रखै वाला वास्तविक रुप स जनै हय ॥३॥

भूमिरापोऽनत्नो वायु: ख मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि आउर अहंकार यी आठ प्रकार स विभाजन भेल हमर मूल्य जड प्रकृति हय । यै स दोसर के जै स यी

सम्पूर्ण जगत धारण केल जाय छय, हमर जीवरुपा या चेतन प्रकृति जाईन ल्या ॥४-५॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतःप्रभवःप्रत्नयस्त्था ॥
मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

सभहीटा भूत यै दुनु प्रकृति स उत्पन्न होई छय, परन्तु सम्पूर्ण संसार के उत्पति, धारणा करैवाला या नाश करैवाला मूलकर्ता हमही छी, हे धनंजय हमरा स फरक कुनो दोसर परम कारण नै हय, यी सारा जगत डोरा मे माला के दाना सब के सदृस्य हमरे मे गुँथल गेल हय ॥६-७॥

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥
पुण्यो गन्धःपृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभुतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥

हे अर्जुन हम पाईन मे रस, चन्द्रमा-सूर्य मे प्रकाश-ज्योति सब बेद सब मेओंकार छी, हमही अकाश मे शब्द आउर पुरुष मे पुरुषत्व छी । हमही पृथ्वी मे सुगन्ध, आईग मे तेज छी, सम्पूर्ण भूत सब मे जीवन आउर तपस्या करवाला मे तप छी ॥८-९॥

बीजं मां सर्वभुतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥

तु सम्पूर्ण भूत सब के सनातन बीज हमरे बुझ हम बुद्धिमान सब के बुद्धि आउर तेजस्वि सब के तेजो छी ॥१०॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥
ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥

हे भरतवंश के मुखिया ! हम बलवान सब के वल या सामर्थ छी, आउर सब भूत सब मे धर्म अनुसार काम छी, जेहो सत्य, रजोगुण तमोगुण स

वनैवाला भाव व पदार्थ छय उ हमरे स उत्पन्न भेल बुझ । येकर बाबजुद हम ओकरा मे नै, उ हमरा मे रहै हय बुझ ॥११-१२॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥

गुण सब के कार्यरुप सात्विक, राजस, तामस भाव सब स यी सारा संसार मोहित भ रहल छय, तै स यै तीनु गुण स दूर रह वाला हम नाश नै होईवाला के नै जनै हय ॥१३॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

किया की यी जे यै लोक मे नै मिलवाला तीन गुणवाला हमर माया बहुत कठीन हय, लेकिन जे मानव मात्र हमरे सदैव याद करैत भजैत रहे हय, उ यै संसार स तैर जाये हय ॥१४॥

न मां दुष्कृतिनो मुढाःप्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

माया स जेकर ज्ञान भ्रष्ट भ जा चुकल हय, येहन असुर राक्षस स्वभाव वाला मानव सब मे नीच आउर गन्दाकर्म करैवाला मुर्ख सब हमरा नै भजै हय ॥१५॥

चतुर्विद्या भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

हौ भरतवंशी श्रेष्ठ अर्जुन ! धन चाहैवाला, दुःखित, हमरा जनै के लेल इच्छा रखै वाला आउर ज्ञानी यी चाईर प्रकार के भक्त सब हमरा भजै-जपै हय ॥१६॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥

वै मे स सदैव हमरा अनन्य प्रेम भक्तिबाला ज्ञानी सब स उत्तम हय, कारण हमरा तत्व स जनै वाला ज्ञानी के हम अति प्रिय छी, आउर यी ज्ञानी हमरो बहुत प्रिय छय ॥१७॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥

यी सभ उदार हय, लेकिन ज्ञानी त प्रत्यक्ष हमर स्वरुपे हय। कारण ज्ञानी भक्त अति उत्तम गति- स्वरुप हमरे मे स्थित रहै छय ॥१८॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

हे अर्जुन वासुदेवे सर्वस्व हय, माईन क ज्ञानी मानव सब हमरे भजै छय, येहन महान आत्मा बहुत दुर्लभ हय ॥१९॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्येदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥
यो यो यां यां तनु भक्तःश्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥

लेकिन भोग विलाश के कामना स जेकर ज्ञान भ्रष्ट भ गेल हय, उ सब अपन-अपन स्वभाव स प्रेरित भ क आउर देवता सब के भजै हय, पूजै हय, जे सकाम भक्त जै देवता के श्रद्धापूर्वक पूजा कर चाहै छै, वै भक्त के श्रद्धा के हम वही देवता मे स्थिर करा दै छी ॥२०-२१॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततःकमान्मयैव विहितान्हि तान् ॥

उ मनुस्य श्रद्धापूर्वक वही देवता के पूजा करै हय आउर वही देवता स हमरे माध्यम स विधि विधान केलहा उहे इच्छित भोग के सन्देह नै क क प्राप्त करै छय ॥२२॥

अन्तवतु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥

लेकिन वै अल्पवुद्धि वाला सबके यी फल नाशवान् हय, देवता सब के पूजैवाला देवता सब के प्राप्त हे तै, आउर हमर भक्त अन्त मे हमरे प्राप्त होई छय ॥२३॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥

मुर्ख मनुस्य हमर अविनाशी परम भाव के नै जाईन क हमर सुक्ष्म के स्थूल मानै हय ॥२४॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।

मुढोऽयं नाभिजानातिलोको मामजमव्ययम् ॥

अपन योगमाया स छिपल हम सब मनुस्य के नै देखाई दै छी, यहि स अज्ञानी सब हमरा जेका अजन्मा नाश नै होई बाला परमेश्वर के नै जनै हय, आउर हमरो जन्म लै वाला, मरै वाला सम्भै हय ॥२५॥

वेदांह समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।

भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥

हे अर्जुन ! पछारी के वितलाहा, वर्तमान मे स्थित आउर अगाडी अबै वाला समय मे होइ वाला सब भूत सब के हम जनै छिये, लेकिन श्रद्धा भक्ति स दूर रहैवाला मनुस्य हमरा नै जनै हय ॥२६॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।

सर्वभुतानि संमोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

हे अर्जुन- संसार मे इच्छा आउर द्वेष स उत्पन्न होई वाला दुःख-सुख के कारण सभ प्राणी सब मोह-माया मे परल हय । लेकिन जेकर पाप नष्ट भ गेल हय, उ रागदोष स भरल मोह स मुक्त दृढनिश्चय करवाला भक्त हमरा सब तरह स भजै छय ॥२७-२८॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।

ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥

हे अर्जुन ! जे ज्ञानी सब हमर शरण भ क बुढापा आउर मृत्यु स छुटकारा पाव के लेल यत्न प्रयास करै हय, उ मनुस्य ब्रह्म के, सब अध्यात्म के आउर सम्पूर्ण कर्म के जनै छय ॥२९॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।

प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥

अधिभूत, अधिदेव व अधियज्ञ के साथ-साथ जे मानव हमरा जनै छै, उ युक्तचितवाला मनुस्य हमरा प्राप्त भ जाई छय ॥३०॥

ऊँ तत्सदिति श्रीभदभगवदगीतासुपनिपत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अध्याय -८

अथाष्टमोऽध्याय

अर्जुच उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥

अर्जुन कहलकै - हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्म की हय ?अध्यात्म आउर कर्म की हय ?अधिभूत आउर अधिदेव केकरा कहै हय ॥१॥

अधियज्ञ:कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभि: ॥

हे मधुसुदन ! यै य अधियज्ञ के हय, आउर उ यै शरीर मे केना हय? युक्तचितवाला मानव सब स अन्तकाल मे अपने कुन तरह स जनै मे अबै छी ॥२॥

श्री भगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्ग: कर्मसञ्ज्ञित: ॥

भगवानकृष्णा कहै हय-परम अक्षर “ब्रह्म” हय । अपन खुद रुप या जीवात्मा“अध्यात्म”कहल जाई हय तथा सारा जगत के उत्पति या बढवै बाला जे आचरण हय, ओकरे “कर्म“ नाम स कहल गेल हय ॥३॥

अधिभूतं क्षरो भाव: पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
आधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥

उत्पत्ति आउर विनाश धर्मवाला सब पदार्थ अधिभूत हय, विश्वरुप मे जे विराट मानव हय, उ अधिदैव हय । यै शरीर मे हम वासुदेव अन्तरयामीरुप स अधियज्ञ छी ॥४॥

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
य:प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशय: ॥

जे मानव अन्त समय तक हमरे याद करैत शरीर के त्यागै हय, उ हमर साक्षात स्वरुप के प्राप्त होई हय, यै मे कुनो संदेह नै हय ॥५॥

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावित: ॥

मानव अन्त समय जै भाव स स्मरण करैत शरीर त्यागतै ओकरे प्राप्त हेतै ॥६॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मध्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

तै द्वारे हे अर्जुन ! तु हर समय सदैव हमर स्मरण करैत युद्धो कर, यै प्रकार स हमरा मे अर्पण केल मन बुद्धि स युक्त भ क तु निःसन्देह हमरे प्राप्त क र बे ॥ ७ ॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चतेसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

हे पार्थ । यी नियम हय कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास रुपी योग स युक्त मानव परम प्रकाश रुप दिव्य पुरुष वा परमेश्वर के मात्रे प्राप्त होई हय ॥८॥

कविं पुराणमनुशासितार- मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ॥
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरुप- मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥

जे मानव सर्वज्ञ, अनादि, सब के नियन्ता, छोटको स छोटका सब के धारण-पोषण करैवाला नित्य चेतन, प्रकाशरुप परमेश्वर के स्मरण करै हय ॥९॥

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ॥
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक-
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

उ भक्तियुक्त पुरुष अन्त समय मे योगबल स भृकुटि के मध्यभाग मे प्राण के स्थापित क क स्वच्छ मन स हमरा याद करैत परमात्मा के प्राप्त होइ हय ॥१०॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तते पदं संग्रहे प्रवक्ष्ये ॥

वेद के जनैवाला ज्ञानी जै परमपद के अविनाशी कहै छय, आसक्ति स दूर रहैवाला संयासी जै मे प्रवेश करै हय, ओई परम पद के हम तोरा लेल संक्षेप मे कह बो ॥११॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूध्नर्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यःप्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

सब इन्द्रिके द्वार सब के रोईक क व मन के इसथीर क क, फेरो प्राण के मस्तक मे स्थापित क क, योग अवस्था मे बैठ क जे मानव"ॐ" यै एक अक्षररुप ब्रह्म के उचारण करतै करैत शरीर के त्याईग दै छै उ मानव परमगति के प्राप्त भ जाई हय ॥१२-१३॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभःपार्थ नित्ययुक्ततस्य योगिनः ॥

हे अर्जुन । जे मानव हमरा सदैव मन लगा क हम पुरुषोत्तम के सच्चा मन स याद करै हय, ओकरा हम सहज प्राप्त भ जाय छि ॥१४॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुर्वन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥

परमसिद्धि के प्राप्त महात्माजन हमरा प्राप्त भ क दुःख स भरल घर मे दोहरा क जनम प्राप्त नै हेतै ॥१५॥

आब्रह्मभुवनालोकाःपुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तय पुनर्जन्म च विद्यते ॥

हे कुन्तीपुत्र ! हमरा पाउला के वाद दोसर जनम नै हेतै, कारण हम काल स दूर उपर छी। आउर सब लोक त काल स सिमित भेला स अनित्य हय ॥१६॥

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥

सतयुग, त्रेता, द्वापर आउर कलजुग के हजार चकर के ब्रह्मा के एक दिन होई छै। आउर ओतवे जुग के राईत सेहो होई हय। येकरा जे जनै हय उ योगी सब काल के तत्व के जनै बाला कहल जाय छय ॥१७॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसञ्ज्ञके ॥

संसार के सब प्राणी ब्रह्मा के दिनके प्रवेश काल मे ब्रह्मा के शुक्ष्म शरीर स उत्पन्न होई छै आउर ब्रह्मा के राईत के प्रवेश काल में ब्रह्में मे लोप भ जाई छय ॥१८॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥

प्राणी सब के यी समूह बेर-बेर उत्पन्न भ-भ क राईत के प्रवेश समय मे ब्रह्मा मे लीन होई छय आउर दिन के प्रवेश समय मे फेरो उत्पन्न होइ छय ॥१९॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽ व्यक्तात्सनातनः ।
यःस सर्वेषु भुतेष नश्यत्सु न विनश्यति ॥

यी व्यक्त (ब्रह्मा) स दूर सनातन अव्यक्त भाव (ब्रह्म) हय, जे कहियो नाश नै होई हय ॥२०॥

अव्यक्तोऽक्षर पइत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तध्दाम परमं मम ॥

अक्षर नामके अव्यक्तभाव के परमगति कहै छय तथा जै सनातन अव्यक्त भाव के पाईव क मानव फिर्ता नै अवै हय, उ हमर परम धाम हय ॥२१॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तः स्थानिभूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥

हे पार्थ । जै परमात्मा के भीतर सर्वभूत (सर्वव्यापक) हय, आउर जै मे सम्पूर्ण जगत परिपूर्ण हय, उ सनातन अव्यत ब्रह्म अनन्य भक्ति स मात्र प्राप्त होई हय ॥२२॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥

हे अर्जुन - जै रास्ता स योगीजन वापस नै अबैवाला गति के आउर दोसर वापस जाईवाला गति के प्राप्त भ जाई हय, उ दुनु मार्ग सब के विषय मे कह ब ॥२३॥

अग्निर्ज्योतिहरःशुकलः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥

जै मार्ग मे ज्योतिर्मय अग्नि, दिन, शुक्लपक्ष, आउर उत्तरायण के देवता हय, उहे रास्ता स ब्रह्मवेता योगीजन यै देवता सब स ल गेलै, जा क ब्रह्म के प्राप्त होइ हय ॥२४॥

धूमो रात्रिस्तथाकृष्णाःषण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥

जै मार्ग पर धूमाभिमानी देवता हय, राइत, अनहरिया आउर दक्षिणायन के ६ महिना मे मैर क गेल सुन्दर काम करै वाला योगी उपर उल्लेख देवता सब स स्वर्ग मे जा क अपन शुभकाम के फल भोईग क फिर्ता अवै हय ॥२५॥

शुक्लकृष्णे गति ह्येते जगतःशाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥

ईजोरिया आउर अनहरिया या देवयान आउर पितृयान जगत के दुगो गति हय । यै मे स एगो स गेल के वापस नै आव परतै आउर दोसर स गेल के फेरो जन्म प्राप्त करै हय ॥२६॥

नैते सृति पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु युगयुक्तो भवार्जुन ॥

हे पार्थ यै तरह स दुनु मार्ग सब के तत्व स जाइन क कुनो योगी मोहित नै हेतै । यै कारण स हे अर्जुन तू सब काल मे समबुद्धिरुप योग स युक्त हु अ ॥२७॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यपुलं प्रदिष्टम्
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥

योगीमानव यै रहस्य के तत्व स जाईन क यज्ञ, तप आउर दानादि के करै मे जे पुण्यफल छय वै सब के पार क जाई छय आउर सनातन परमपद के प्राप्त होई छय ॥२८॥

ऊँ तत्सदितिश्रीभद्भगवद्गीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेअक्षर ब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्याय ॥८॥

अध्याय -९
अथ नवमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यञ्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥

श्रीभगवान कहै हय! तोरा जेका ज्ञानवान भक्त के लेल यै परम गोपनीय ज्ञान के दोहरा क भलिभाती कह ब, जै के जाईन क तू दुःख स भरल संसार स छुटकारा पाईब जेब ॥१॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥

यी ज्ञान सब विद्या सब मे उत्तम, परम पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्म स भरल, साधना करै में वडा सुगम आउर नाश नै होई बाला हय ॥२॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

यै ज्ञान (धर्म) पर श्रद्धा नै रखैवाला हमरा नै प्राप्त भ क संसार के चकर लगा क भ्रमण कैरते रहतै ॥३॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥

हमरा जेका निराकार परमात्मा स यी सब जगत संसार परिपूर्ण हय, आउर सब भूत हमरे अन्दर स्थित हय, लेकिन हम ओकरा मे स्थित नै छी ॥४॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमै श्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥

उ सब भूत हमरा मे स्थित हय, लेकिन भूत के धारण पोषण करै वाला आउर भूत सब के उत्पन्न करै वाला, भेला के वावजूद हम भूत सब मे स्थित नै ओकरा स अलग छी ॥५॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वगत्रो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥

जेना अकाश स उत्पन्न सब जगह विचरन करै वाला हवा सदैव अकाश मे स्थित हय, ओनाही हमरा संकल्प स उत्पन्न होइ वाला सवभूत हमरे मे स्थित हय, से जान ॥६॥

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥

युग के अन्त मे सब भूत हमरे मे लुप्त होई हय, आउर युग के शुरु में ओकरा हम फेरो रचै छियै ॥७॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनःपुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥

हम ही यै सब भूतसमुदाय के बेर-बेर ओकरे कर्म सब के अनुसार रचै छी ॥८॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥

हे अर्जुन ! तैयो वै काम सब स आसिक्त रहित आउर उदासीन हम परमात्मा के उ कर्म नै बन्हतै ॥९॥

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्धिपरिवर्तते ॥

हे अर्जुन । प्रकृति हमरे पर भर भ क जगत के रचै हय । अहि स यी संसार चकर घुइम रहल हय ॥१०॥

अवजानन्ति मां मूढा मानुषिं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

हमर परमभाव के नै जनैवाला मूर्ख मनुस्य सव संसार के उद्धार के लेल मनुस्यरुप मे विचैरतो हम परमेश्वर के सधारण मानव मानै छय ॥११॥

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥

येहन मुर्ख सब के कर्म, ज्ञान आउर आशा सब निष्फल हय, आउर बुद्धि विक्षिप्त । उ मोहग्रस्त अज्ञानी राक्षसी आउर असुरी भाव सब के प्राप्त करै हय ॥१२॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वाभूतादिमव्ययम् ॥

लेकिन दैवी प्रकृति के महात्माजन हमरा सव भूत सब के सनातन कारण आउर नाशरहित अक्षरस्वरुप जाइन क अनन्य मन स हमरे सदैव भजैत रहै हय ॥१३॥

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

उ दृढ निश्चय बाला भक्तजन हमरा पबै लेल सदैव हमर नाम आउर गुण सब के भजन आउर प्रणाम करैत अनन्य प्रेम स हमर उपासना करैत रहै हय ॥१४॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथकत्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥

दोसर ज्ञानयोगी हम निर्गुण निराकार ब्रह्म के अभिन्न भाव स पूजा करैत हमर उपासना करै छय, दोसर मनुस्य बहुत तरह स हम विराटस्वरुप परमेश्वर के अलग-अलग रुप सब मे उपासना करै छय ॥१५॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥

हे अर्जुन - अभिलाषा, यज्ञ, स्वधा, औषधि, मन्त्र, घि, आईग हम छी आउर हवन रुप क्रिया सेहो हम ही छी ॥१६॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
बेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥

यै पूरा जगत के धारण करै वाला आउर कर्म सब के फल देब वाला-बाप, म्याय, दादा, पवित्र ओंकार व चारु बेद सेहो हम ही छी ॥१७॥

गगिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।

प्रभव:प्रलय: स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥

पबैबाला परमधाम पालन पोशन करैबाला सब के मालिक, शुभाशुभ के देखबाला, सब के रहै बाला स्थान के रक्षा करैबाला, पोषैबाला, सब के उत्पति-प्रलय करैबाला, अधार-स्थापना, सुरक्षित रखैबाला आउर नाश नै होईबाला बीज सेहो हम ही छी ॥१८॥

तपाम्यहमहं वर्ष निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्याहमर्जुन ॥

हम ही सूर्यरुप स तपै छी, हम ही वर्षा के रोकै आउर बरसबै छी हम ही अमृत आउर मौत छी, सत-असत हम ही छी ॥१९॥

त्रैविद्या मां सोमपा:पूतपापा-
यज्ञैरिष्टवा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगाम् ॥

तिनु बेद सब के अनुष्ठान करै बाला आउर सोमरस पिबैबाला पाप स दूर रहल मनुस्य हमरा यज्ञ स पूईज क स्वरग के पाबचाहै हय, उ अपना पुण्य के फल के प्रताप स स्वरग लोक पाईब क देवता सब के दिव्य भोग सब के भोगे छय ॥२०॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं-
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना-
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥

उ सब ओई विशाल स्वरग लोक के भोईग क पुण्य क्षीण भेला पर मृत्युलोक प्राप्त होई छय। यै प्रकार स्वरग के साधानरुप तिनु वेद सब मे कहल गेल सकाम कर्म के आश्रय लै वाला आउर भोग सबके कामना करै बाला पुरुष बेर बेर येनाई जेनाई के प्राप्त होइ छयायानि पुण्यके प्रभाव स स्वर्ग में जाई हय आउर पुण्य क्षीण भेला पर मृतलोक में अबै हय। ॥२१॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

जे अनन्य प्रेम कर बाला भक्त सब हम परमेश्वर के सदैव चिन्तन-मनन करैत फल के इच्छा नै राईख क हमरा भजै छय ओकर सब प्रकार के फल हम खुद प्रदान करै छि ॥२२॥

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

हे अर्जुन । तथापि श्रद्धापूर्वक स जे सकाय भक्त दोसर देवता सब के पुजै छय उहो हमरे पुजै छय कारण ओकर यी पूजा नै जाइन क केल गेल मानल जेतै ॥२३॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्वेनातश्च्चवन्ति ते ॥

कियाकी सब यज्ञ सब के भोक्ता आउर मालिक त हमही छी, लेकिन उ हम परमेश्वर के तत्व स नै जनै के कारण दोहरा क जन्म प्राप्त होई छय ॥२४॥

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

देवता सब के पूजा करैबाला देवता सब के, पिता सब के पूजा करैबाला पिता सब के, आउर भूत सब के, पूजा करै बाला भूत सब के प्राप्त होइ छय लेकिन हमरा पूजा करैबाला भक्त हमरे प्राप्त होई छय तै स ओकर दोहरा क जन्म नै होई छय ॥२५॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

जे कुनो भक्त हमरा लेल प्रेम स पत्र, पुष्प, फल, जल स अर्पण करै छय, वोई शुद्धबुद्धिबाला निष्काम भक्त के प्रेम पूर्वक अर्पण केल गेल उ पत्र-पुष्पादि मे सगुणरुप मे प्रकट भ क प्रेम पूर्वक ग्रहण करैछियै ॥२६॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

हे अर्जुन । तु जे काम करै छ, जे खाई छ, जे हवन करै छ जे दान दै छ, आउर जे तपस्या करै छ, उ सभटा हमरा अर्पण कर ॥२७॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।

संन्यासयोगयुक्तात्मा विभुक्तो मामुपैष्यसि ॥

यै तरह स तू शुभाशुभ फलरुप काम बन्धन स मुक्त भ जेव आउर वै स मुक्त भ क हमरे प्राप्त कर ब ॥२८॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

हम सब भूत सब मे बराबर भाव स व्यापक छी, न हमर कोई अप्रिय/प्रिय हय, लेकिन जे भक्त हमरा प्रेम पूर्वक भजै छय, उ हमरा मे हय आउर हमहु ओकरा मे छि ॥२९॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

अगर कुनो अतिशय दुराचारी सब अनन्य भाव स हमर भक्त भ क हमरा भजै छय तव उ साधुये मानै योग्य हय, कारण उ माईन लेने हय कि परमेश्वर के भजन समान आउर कुछो नै हय ॥३०॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तःप्रणश्यति ॥

उ जल्दी धर्मात्मा भ जाई छै आउर परम शान्ति के प्राप्त भ जाई छय । हे अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक सत्य जाईन ल्या कि हमर भक्त नाश नै हेतै ॥३१॥

मां हि पार्थ व्यापाश्रित्य येऽपि स्युःपापुयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शुद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

स्त्री, वैश्य, शुद्र वा पापी सब हमर शरण भ क परमगति के प्राप्त होई छय ॥३२॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥

पुण्यशील ब्राह्मण वा राजर्षि भक्त सब हमरे शरण भ क परमगति के प्राप्त होइ छय, तै स तु सुख स दूर आउर क्षणभंगुर यै मनुष्य शरीर के पाईव क सदैव हमरे भजन करैत रह ॥३३॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

हमरा मे मन लगा, हमर भक्त वैन जो, हमर पूजा कर, हमरे प्रणाम कर, यै तरह स आत्मा के हमरे मे लगा क तू हमरे प्राप्त कर बे ॥३४॥

ॐ तत्सदितिश्रीभद्भगवदगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णर्जुन संवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो
नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अध्याय -१०

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच
भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।

श्री भगवान कहलकै-हे महाबाहो! फिर भी हमर परम रहस्य आउर प्रभाव स युक्त बात सब सुन, जे हम तोहर जेका अतिप्रिय के हित के इच्छा स कह बै ॥१॥

न मे विदुः सुरगणाःप्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥

हमर उत्पति के नै देवता जनै छय आउर नै महर्षिजन, कारण हम सब प्रकार के देवता सब आउर महर्षि-जन सब के आदि कारण छी ॥२॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

जे हमरा अजन्मा अर्थात् जन्म नै लै वाला, नित्य अर्थात सब के कारण आउर ईश्वर तत्व स जनै छय उ मानव सब मे ज्ञानवान पुरुष सब पाप सब स मुक्त भ जाई छय ॥३॥

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहःक्षमा सत्यं दमःशमः ।
सुखं दुःखंःभवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्तिभावाभूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥

निश्चय करै के शक्ति, बुद्धि, यथार्थ ज्ञान, क्षमा, सत्य, इन्द्रि सब के वश मे रखनाई, मन के वश मे केनाई, सुख-दुख उत्पत्ति-प्रलय आउर भय-अभय तथा अहिंसा, समता, सन्तोष, तप, दान, कीर्ति-अपकीर्ति सब, सब प्रकार के भाव हमरे स होइ छय ॥४-५॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाःप्रजाः ॥
एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥

सात महर्षिजन, सनकादि ऋषिगण तथा चौध मनु इहो सब के सब हमर संकल्प स उत्पन्न भेल हय, जेकर यी सम्पूर्ण संसार प्रजा हय। जे हमर यै परमेश्वररुप विभूति आउर योगशक्ति के तत्व स जनै छय , उ निश्चल भक्तियोग स युक्त भ जाई हय, ऐ मे शंका नै हय ॥६-७॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥

हम वासुदेव त सम्पूर्ण जगत के उत्पति मूल के कारण छी, आउर हमरे मे सब जगत चेष्टा करै हय, यी बुझ्झ क भक्तजन हम परमेश्वर के मात्रै भजै छय ॥८॥

मच्चिता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥

सदैव हमरा मे मन लगवैबाला भक्तजन हमर चर्चा करैत सदैव सन्तुष्ट होई छय आउर हम बासुदेवे के सदैव ध्यान करै हय ॥९॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

हमर ध्यान आदि मे लागल हमरा प्रेमपूर्वक भजै वाला भक्त सब के हम उ तत्वज्ञानरुप योग दै छी, जे स उ हमरे प्राप्त होई छय ॥१०॥

तेषांमेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

हे अर्जुन । ओकरा अन्तकरण मे स्थित भेल हम खुदे ओकर अज्ञानजनित अन्धकार के प्रकाशमय तत्वज्ञानरुप दीया के माध्यम स नष्ट क दै छी ॥११।

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभूम् ॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥

अर्जुन कहै हय - अहां परम ब्रह्म, परम धाम आउर परम पवित्र छी कारण अपने के सब ऋषिगण सनातन, दिव्यपुरुष वा देवो के आदि देव, अजन्मा, सर्वव्यापी कहै छय । देवर्षि नारद तथा महर्षि व्यास सेहो येनाही कहै छय आउर अहां सेहो ॥१२-१३॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥

हे केशव । जे कुछ अपने कहै छी, यै सब के हम सही मानै छी । अहां के लीलामय स्वरुप के नै त राक्षस जनै हय आउर नै देवता ॥१४॥

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥

हे सब के पैदा कर बाला, हे सब के ईश्वर, हे देव सब देव हे जगत के मालिक, हे पुरुषोत्तम ! अहां खुद त अपना के जनै छी ॥१५॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥

यहि द्वारे अहां खुद उ अपना दिव्य विभूति सब के हमरा स कहू जै स अपने सब लोक सब में व्याप्त छी ॥१६॥

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥

हे योगेस्वर । हम केना क सदैव चिन्तन करैत अपने के जाईन सकी? हे भगवान कुन-कुन रुप सब मे हम अहां के चिन्तन करु ? ॥१७॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।

भूयःकथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥

हे जनार्दन । अपना योगशक्ति आउर विभूति सब के विस्तार स कहु, कारण अहां के अमृतमय बचन सब के सुनतो हमरा संतुष्टि नै होइ छय ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्रधान्यतः कुरु श्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥

श्री भगवान कहै हय - हे कुरुश्रेष्ठ । आब हम जे हमर मुख्य दिव्य रुप सब हय, ओकरा बारे मे तोरा लेल प्रधानता स कहब, कारण हमर विस्तार के अन्त नै हय ॥१९॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥

हमही सब भूत सब मे स्थित सब के आत्मा छी तथा सब के आदि मध्य आउर अन्तो हमही छी ॥२०॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥
वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्दियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥

हम अदिति के बारह पुत्र सब मे विष्णु आउर ज्योति सब मे सूर्य छी । हमही उन्चास वायुदेवता सब मे तेज आउर नक्षत्र सब के अधिपति चन्द्रामा छी । हम वेद सब मे सामवेद छी, देवता सब मे इन्द्र छी, इन्द्रिय सब मे मन आउर जीवजन्तु सब के जीवनशक्ति छी ॥२१-२२॥

रुद्रणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावक श्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥

हम एघार रुद्र सब मे शंकर छी आउर यक्षो व राक्षस सब मे कुवेर छी । बस्तु सब मे आईग छी आउर पर्वत सब मे सुमेरु छी ॥२३॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥

हे अर्जुन ! पुरोहित सब मे देवगुरु बृहस्पति हमरे बुझ । हम सेनापति सब मे स्कन्द आउर जलाशय सब मे समुंदर छी ॥२४॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥

हम महर्षि सब मे भृगु आउर शब्द मे ओंकार छी । यज्ञ सब मे जपज्ञय आउर स्थिर रहैवाला मे हिमालय छी ॥२५॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षिणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथःसिद्धानां कपिलो मुनिः ॥

हम सब गाछ मे पीपल के गाछ, देवरिषी मे नारद, मुनीगन्धर्व सब मे चित्ररथ आउर सिद्ध सब मे कपिल मुनी छी ॥२६॥

उच्चैः श्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नारणां च नराधिपम् ॥

हे अर्जुन । घोडा सब मे अमृत के संग उत्पन्न होइ बाला उच्चैश्रवा, हाथि सब मे ऐरावत आउर मानव सब मे राजा हमरे बुझ ह॥२७॥

आयुधानामहं बज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि बासुकिः ॥

हम शास्त्र सब मे बज्र आउर गाई सब मे कामधेनु छी । शास्त्र के रीती स सन्तान के उत्पति के लेल कामदेव छी, आउर सांप मे सांप के राजा बासुकि छी ॥२८॥

अनन्त श्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥

हम नाग सब में शेषनाग आउर जलचर सब के अधिपति वरुण देवता छी । हम पितरो मे अर्यमा तथा शासन करैवाला मे यमराज छी ॥२९॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालःकलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥

हम दैत सब मे प्रहलादआउर गणना करै बाला में समय छी । जानवर सब मे सिंह आउर चिरै सब मे गरुड छी ॥३०॥

पवनःपवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥

हम पवित्र करैवाला मे वायु आउर शास्त्र धारण करैवाला मे श्रीराम छी । माछ सब मे मगर छी आउर नदी सब मे श्रीभागीरथी गंगाजी छी ॥३१॥

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥

सृष्टि के आदि शुरु, अन्त वा मध्यौ हमही छी । हय विद्या सब मे अध्यात्मविद्या आउर शास्त्रार्थ करै बाला के लेल तत्व निर्णायक वाद छी ॥३२॥

अक्षराणामकरोयस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥

हम अक्षर सबमे अकार आउर समास सब में द्वन्द्व समास छी । काल के महाकाल तथा सव तरफ मुखवाला विराटस्वरुप, सब के धारण पोषण कर बाला सेहो हम ही छी ॥ ३३ ॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिःश्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिःक्षमा ॥

हम सब के नाश करैवाला मौत आउर उत्पन होईवाला सब के उत्पतिके अधार छी तथा जनेना सब मे कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति आउर क्षमा छी ॥३४॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासनां मार्गशीर्षोऽहमृतुनां कुसुमाकरः ॥

तथा गायन कर योग्य श्रुति सब मे बृहत्साम आउर छन्द सब मे गायत्री छी । महिना सब मे अगहण आउर ऋतुसब मे बसन्तो ऋतु हमही छी ॥३५॥

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्वं सत्ववतामहम् ॥

हम छल करै बाला मे जुआ आउर प्रभावशाली पुरुष सब के प्रभाव छी । हम जीतैवाला के विजय छी, निश्चय करैवाला के निश्चय आउर साधु सब के सात्विक भाव छी ॥३६॥

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः ।

मुनीनामप्यहं व्यास:कवीनामुशना कवि: ॥

वृष्णिवंशि सब मे बासुदेव वा हम खुद तोहर साथी सखा, पाण्डव सब मे धनंजय अर्थात् तू, मुनी सब मे वेदव्यास आउर कवि सब मे शुक्राचार्य कवियो हमही छी ॥३७॥

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥

हम दमन करेवाला के दण्डशक्ति छी, विजय करबाला के नीति छी, गुप्त रखै योग्य भाव सब के रक्षक मौन छी, आउर ज्ञानी सब के तत्वज्ञान हमही छी ॥३८॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥

सब भूत सब क उत्पति के कारणो हमही छी, कारण एहने कोई नै, जे हमरा स अलग रहै ॥३९॥

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतिनां परन्तप ।
एष तुद्देशत:प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥

हे परंतप । हमर दिव्य विभूति सब के अन्त नै । हम खुद अपन विभूति सब के वर्णन संक्षेप मे कहली य ॥४०॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥

जे-जे सब ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त, आउर शक्तियुक्त साधन सब हय वै सब के तू हमर तेज के अंश के सेहो अभिव्यक्ति बुझ ह ॥४१॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

हे अर्जुन । यै सम्पूर्ण विस्तार के जाईन क तोरा कि फाइदा? संक्षेप में एतवे जाईन ल्या कि यै सम्पूर्ण जगत के हम अपन योगशक्ति के एक यंश स धारण क क स्थित छी ॥४२॥

ऊँ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्याय: ॥१०॥

अध्याय -११

अथैकादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्याम्तसंज्ञितम्।
यवयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥

अर्जुन कहै छय - हमरा पर अनुग्रह करै के लेल अहां जे परम गोप्यनीय आध्यात्म विषय के यी उपदेश सुनौली, यै स हमर यी अज्ञानता नाश भगेल हय ॥१॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तःकमलपत्राक्ष माहत्म्यमपि चाव्ययम् ॥

हम अपने स उत्पति-प्रलय विस्तार पूर्वक सुन ली तथा अपने के अविनाशी महिमो सुनली ॥२॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रुपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥

अहां जे कहली, उ ठीक हय, लेकिन हे पुरुषोत्तम ! अपने के ज्ञान, एश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य आउर तेज स युक्त ऐश्वर्य रुप के हम प्रत्यक्ष देख चाहै छी ॥३॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥

जदि हमरा स अपने के यी रुप देखनाई संभव हय, तब हे योगेश्वर ! वै अविनाशी स्वरुप के हमरा दर्शन कराउ ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रुपाणि शतशोऽथ सहस्त्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनी च ॥

श्री भगवान कहलकै - हे पार्थ - आब तू हमर हजारो-हजार प्रकार के आउर नाना वर्ण व आकृतिबाला अलौकिक रुप सब के देख ॥५॥

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥

हे अर्जुन। तु हमरा मे आदित्यो के, आठ बसु सब के, एघार रुद्र सब के, दुनु अश्वनीकुमार सब के, आउर उन्चास वायु सब के, व आउरो बहुतो पहिले स नै देखै वाला आश्चर्यमय रुप सब के देख ॥६॥

इहैकस्थं जगत्कृत्सनं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥

हे अर्जुन। आब यै हमर शरीर मे एक जगह स्थित चराचर समेत सम्पूर्ण जगत के व आउरो जे कुछो देख चाहै छ सेहो देख ॥७॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुःपश्य मे योगमैश्वरम् ॥

लेकिन हमरा तु अपना यै आंईख सब स देखै मे समर्थ नै छ तहि स हम तोरा दिव्य अर्थात् अलौकिक आंईख दै छी । यै स तू हमर ईश्वरीय योगशक्ति के देख ॥८॥

संजय उवाच
एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रुपमैश्वरम् ॥

संजय कहै हय- हे राजन। महायोगेश्वर आउर सब पाप सब के नाश करैबाला भगवान कृष्णा यै प्रकार कहि क अर्जुन के अपन परम ऐवश्वर्ययुक्त दिव्यस्वरुप देखौल कै ॥९॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥

बहुत मुख आउर आईख सब स युक्त, आश्चर्यजनक दर्शन सब बाला, बहुत दिव्य भूषण सब स युक्त आउर बहुत दिव्य शास्त्र सब के हाथ सब मे उठौने, दिव्य माला आउर कपडा सब धारण केल गेल आउर दिव्य सुगन्ध के पुरा शरीर मे लेप केल गेल, सब प्रकार स अचम्भीत आश्चर्य युक्त, सीमा स दूर आउर सब तरफ मुख केल गेल विराटस्वरुप परमदेव परमेश्वर के अर्जुने देखलकै ॥१०-११॥

दिवि सूर्यसहस्त्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।

यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥

अकाश मे हजार सूर्य सब एक साथ उगला स जे प्रकाश हे तै उहो वै विश्वरुप परमात्मा के प्रकाश के सदृश्य स कमे छय ॥१२॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥

पाण्डु पुत्रअर्जुन वै समय बहुत तरह के विभक्त अर्थात् अलग-अलग सारा जगत के भगवानश्रीकृष्ण के वै शरीर मे एक जगह स्थित देखल कै ॥१३॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धञ्नजयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥

यहि के बीचमें आश्चर्य स चकित आउर पुलकित अर्जुन प्रकाशमय विश्वरुप परमात्मा के श्रद्धा स आउर भक्ति स सिर झुका क प्रणाम क क हाथ जोईर क कहल कै ॥१४॥

अर्जुन उवाच
पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृर्षीश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ।

अर्जुन कहलकै हे देव । हम अहां के शरीर मे सब देवता सब के, अनेक भूत सब के समुदाय के,ब्रह्माजी, महादेवजी आउर सब ऋषि सब के तथा दिव्य सर्प सब के देखै छी ॥१५॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं-
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरुपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं-
पश्यामी विश्वेश्वर विश्वरुप ॥

हे सम्पूर्ण संसार के मालिक, अपने के बहुत हाथ, पेट, मुख आउर आंईख सब स युक्त व सब ओर स आउर अनन्त रुपसब बाला देखै छी । हे विश्वरुप! हम अहां के नै अन्त देखै छी, नै मध्य आउर नै आदि शुरुवात के सेहो ॥१६॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥

अहां के हम मुकुट, गदा, आउर चक्र स युक्त सब तरफ स प्रकाशमान आईग आउर सूर्य के सदृश्य ज्योतियुक्त, एहन रुप मे देख रहल छी, जै पर नजर दृष्टि नै टीक रहल छय ॥१७॥

त्वमक्षंर परमं वेदितव्यं-
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययःशाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥

अहिं खुद जनै बाला योग्य परब्रह्म परमात्मा छी, अहिं यै जगत के आश्रय छी, अहीं अनादि धर्म के रक्षक छी आउर अहीं नाश नै होई बाला सनातन पुरुष छी, इहे हमर मत हय ॥१८॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यमि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं-
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्म् ॥

अही के आदि, अन्त आउर मध्य स दूर, अनन्त समार्थ्य स युक्त, अनन्त हाथबाला, चन्द्र आउर सूर्यरुप आंईखबाला प्रज्वलित आईग रुप मुखवाला आउरो खुद के तेज स यै जगत के संतप्त करैत हम देखै छी ॥१९॥

द्यावापृथिव्योरिमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्टवाद्भुतं रुपमुग्रं तवेदं-
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥

हे महात्मन् । यी स्वर्ग आउर पृथ्वी के बीच के सम्पूर्ण अकाश व सब दिशा सब अपने स परिपूर्ण हय । अहां के यै अलौकिक आउर भयंकर रुप के देख क तिनु लोक अत्यन्त व्यथा के प्राप्त होई छय ॥२०॥

अमी हि त्वां सुरसङ्घाः विशन्ति

केचिद्भीता:प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
स्तुवन्ति त्वं स्तुतिभि:पुष्कलाभिः ॥

देवता सब के समूह अपने में हय आउर कुछ देवता सब भयभीत भ क हाथ जोइर क अपने के नाम आउर गुणसब के उच्चारण क रहल हय । महर्षि आउर सिद्धपुरुष के समुदाय"कल्याण हो" कैह क उत्तम स्त्रोत सब स अपने के स्तुति करै हय ॥२१॥

रुद्रादित्य वसवो ये चं साध्या-
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा-
वीक्षन्ते त्वां विस्मिता श्चैव सर्वे ॥

एघार रुद्र, बारह आदित्य, आठ बसु, साध्यगण, विश्वदेव, अश्वनी कुमार, मरुद्‌गण आउर पितरों, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों आउर सिद्ध सब के विशाल समूह विस्मित भ क अपने के देखै छय ॥२२॥

रुपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं-
महाबाहो बहुबाहुरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं-
दृष्टवा लोका:प्रव्यथितास्तथाहम् ॥

हे महाबहो! अपने के बहुत मुख आउर नेत्रोंवाला, बहुत हातसव, जधां सब आउर पैर सब बाला, बहुत उदर सब बाला आउर बहुत से दाढी के कारण अत्यन्त विकराल महान रुप के देख क सब लोक व हमहु बहुत व्याकुल भ रहल छी ॥२३॥

नभ:स्पृशं दीप्तमनेकवर्णं-
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥

हे विष्णो ! अकाश के स्पर्श करै बाला, अनेक वर्णो स युक्त, देदीप्यमान, फैललमुख आउर प्रकाशमान् विशाल आंईख स युक्त अपने के देख क भयभीत भेल हम धीरज आउर शान्ति नै पवै छी ॥२४॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

दाढी दाढो के कारण विकराल आउर प्रलयकाल के आईग के समान प्रज्वलित अपने के मुख के देख क हमरा दिशा सब के ज्ञान नै रहल आउर सुखो नै पौली । तै स हे देवेस अहाँ प्रसन्न भ जाउ ॥२५॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।
भीष्मो द्रोणः सुतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥

धृतराष्ट्र के सबटापुत्र, राजा सब के समुदाय समेत अपने मे प्रवेश क रहल हय । भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य आउ कर्ण व हमरा पक्ष के प्रधान योद्धा सब सहित सब के सब अपने के विकराल मुख मे बडी बेग स दौरैत प्रवेश क रहल हय । बहुतो त चूर्ण भेलहा मस्तक सहीत अपने के दांत सब के बीच मे लागल देखाई द रहल हय ॥२६-२७॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥

जेना नदि सब के जल समुद्र मे प्रवेश करै हय, ओनाही उ वीर अपने के प्रज्वलित मुख मे प्रवेश करै हय ॥२८॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा-
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-

स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥

जेना कीट पतंग मोहवश नष्ट होई के लेल प्रज्वलित आइग मे अतिवेग स दौड क प्रवेश करै हय, ओनाही यी सब लोक सेहो खुद के नाश के लेल अपने के मुख सब मे अतिवेग स दौरते प्रवेश क रहल हय ॥२९॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं-
भासस्तवोग्राःप्रतपन्ति विष्णो ॥

अपने सम्पूर्ण लोक सब के प्रज्वलित मुख सब स ग्रास क क सब ओर स चाईट रहल छी । अपने के उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत के तपा रहल छय ॥३०॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररुपो-
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं-
न ही प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥

हमरा बताउ कि अपने उग्ररुप बाला के छी? हे देवो मे श्रेष्ठ!अपने के नमस्कार हय । अहां प्रसन्न होउ । अहां के हम विशेषरुप स जान चाहै छी, कारण अहां के प्रवृति के हम नै जनै छी ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच
कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताःप्रत्यनीकेषु योधाः ॥

श्री भगवान कहलकै - हम सब लोक के नाश करै बाला महाकाल छी । यै समय येकरा सब के नाश करै लेल प्रवृत भेल छी । एहि कारण स प्रति-पक्षिसब के सेना मे जे योद्धा हय उ सब तोरा युद्ध नहियो केला पर भी नष्ट भ जेतै ॥३२॥

तस्मात्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वाशत्रून्भूङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।

मयैवैते निहताःपूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥

तैयो तु उठ । यश प्राप्त कर आउर शत्रु सब के जीत क धन धान्य स सम्पन्न राज्य के भोग । यी सब सुरबीर पहिले हमरा स माईर देल गेल हय तु त केवल निमित्त मात्र बैन जो ॥३३॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्ण तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा-
युध्यस्व तेजासि रणे सपत्नान् ॥

द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, जयद्रथ, कर्ण व अन्य बहुतो हमरा स मारल गेल शूरवीर योद्धा सब के तु मार । भय नै कर । निःसन्देश तू जीत बे ॥३४॥

संजय उवाच
एतर्च्छ्रुत्वा बचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं -
सगद्गदं भीतभीतःप्रणम्य ॥

संजय कहै छय - भगवान के यै बचन सब के सुइन क मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोइर काँपते नमस्कार क क श्रीकृष्ण स गद गद वाणी मे कहल कै ॥३५॥

अर्जुन उवाच
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥

अर्जुन कहै छय - हे अन्तर्यामी । अपने के नाम, गुण आउर प्रभाव के भजन स जगत अति हर्षित भ रहल छय आउर अनुराग सेहो प्राप्त भ रहल छय । भयभित राक्षस सब चारो दिशा मे भाईग रहल छय आउर सिद्धगणों के समुदाय अपने के प्रणाम् क रहल हय ॥३६॥

कस्माच्य ते न नमेरन्महात्मन्

गरियसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥

ब्रह्मा के सेहो आदिकर्ता आउर सब स वडा अपने के लेल उ केना नमस्कार नै करतै । हे अनन्त । हे देवेश । हे जगन्निवास । जे सत्-असत् आउर वहु स दूर सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हय, उ स्वयं अपनेही छी ॥३७॥

त्वमादिदेवःपुरुषःपुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेतासि बेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरुप ॥

अपने आदिदेव आउर सनातन पुरुष छी, अपने यै संसार के परम आश्रय, जनैवाला व जनै योग्य आउर परमधाम छी । हे अनन्तरुप । अपने स यी सब संसार व्याप्त व परिपूर्ण हय ॥३८॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणःशशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्त्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

अपने वायु, यमराज, अग्नि, बरुण, चन्द्रमा आउर प्रजा के स्वामी ब्रह्मा के से हो पीता छी । अहां के लेल हजार-हजार बेर नमस्कार छय, बेर-बेर नमस्कार छय ॥३९॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तविर्यामितविक्रमस्त्वं-
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥

हे अनन्त । अपने के अगाडी/पछाडी स नमस्कार, अपने के लेल सब तरफ स नमस्कार हय, अनन्त पराक्रम शाली अहां समस्त संसार के व्याप्त केने छीयै । यै स अहिं सेहो सर्वरुप छी ॥४०॥

सखेति मत्वा प्रसभं युदुक्तं-
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।

अजानता महिमानं तवेदं-
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं-
तत्क्षामये त्वामहप्रमेयम् ॥

अपने के यै प्रभाव के नै जनैत, अहां हमर सखा छी ऐना माईन क प्रेम स अथवा प्रमाद स हम, हे कृष्णा, हे यादव, हे सखा, आदि जे कुछो विना सोइच समैभ्फ क कहली आउर अपने जे हमरा स विहार, शयन, आसन आउर भोजन आदि मे अकेले वा वै सब सखा के सामने तिरस्कार केली, वै सब अपराध सब के लेल हम अहां स क्षमा मंगै छी ॥४१-४२॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पुज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
नत्वत्समोऽस्तभ्यधिकः कुतोऽन्यो-
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥

अपने यै चराचर जगत के पिता आउर सब स वड़ा गुरु एवं अति पूज्यनी छी । हे अनुपम प्रभाव वाला ! तीनो लोक सब मे अपने के समान सेहो दोसर कोई नै हय, फेरो अधिक त केना भ सकै हय ॥४३॥

तस्मात्प्रणस्य प्रणिधाय कायं-
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियःप्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

हे प्रभो । हम भलिभाँती अपने के चरण मे प्रणाम क के, स्तुति करै योग्य अपने ईश्वर के प्रसन्न होई के लेल प्रार्थना करै छी । हे देव । पिता जेना पुत्र के, सखा जेना सख के, आउर पति जेना प्रियतमा (पत्नी)के अपराध के क्षमा करै छै ओनाही अहूंओं हमरा अपराध सब के क्षमा करै जोग छी ॥४४॥

अदृष्यपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्रवा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।

तदेव मे दर्शय देवरुपं-
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

हम पहिले नै देखने रहि अपने के यी विराटरुप के देख क हर्षित भ रहल छी साथ मे हमर मन भय स व्याकुलो भरहल हय । तै स अपना चतुर्भुज विष्णुरुप के हमरा देखाउ ॥४५॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां दुष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रुपेण चर्तुर्भुजेन
सहस्त्रबाहोभव विश्वमूर्ते॥

हम ओनाही अहां के मुकुट धारण केलहा तथा गदा आउर चक्र हाथ मे लेलहा देख चाहि छी, तै द्वारे हे विश्व स्वरुप । हे सहस्रवाहो । अहाँ वही चतुर्भुज रुप स प्रकट होउ ॥४६॥

श्रीभवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं-
रुपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं-
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥

श्री भगवान कहलकै - हे अर्जुन । हम अपना योग शक्ति के प्रभाव स यी परम तजोमय, सब के आदि आउर सीमा रहित विराटरुप तोरा देखौलीय, जे तोरा बाहेक अन्य कोई पहिले नै देखने रहै ॥४७॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरुपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥

हे अर्जुन । मनुस्यलोक मे यै प्रकार विश्वरुपवाला हम नै बेद आउर यज्ञों के अध्ययन स, नै दान स, नै क्रियाओ स आउर नै उग्र तपों स सेहो तोरा अतिरिक्त दोसर केकरो स देखल जा सकै छी ॥४८॥

मा ते व्यथा मा च विभूढभावो-
दृष्ट्वा रुपं घोरमीदृङममेदम् ।

व्यपेतभीःप्रीतमनाःपुनस्त्वं
तदेव मे रुपमिदं प्रपश्य ॥

हमर यै प्रकार के विकराल रुप के देख क तोरा व्याकुल नै होना चाहि आउर नै मूढभावा बाला तू भय रहित आउर प्रीतियुक्त मनवाला भ क हमर यै चतुर्भुज रुप के फेरो देख ॥४९॥

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्तवा
स्वकं रुपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं-
भूत्वा पूनः सौम्यवपूर्महात्मा ॥

संजय कहलकै - बासुदेव भगवान - अर्जुन स यै प्रकार कैह क अपना चतुर्भुज रुप के देखौल कै आउर सौम्यमूर्ति भ क अर्जुन के धीरज देल कै ॥५०॥

अर्जुन उवाच

दृष्टवेदं मानुषं रुपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृतः सचेताःप्रकृतिं गतः ॥

अर्जुन कहलके हे जनार्दन । अपने के यै शान्त मनुस्य रुप के देख क आब हम स्थिरचित भ गेली आउर अपन स्वभाविक स्थिती के प्राप्त भ गेल छी ॥५१॥

श्री भगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रुपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवाअप्यस्य रुपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणङः ॥

श्री भवान कहलकै - हमर जे चतुर्भुज रुप तु देखने छ, येकर दर्शन बहुत दुर्लभ हय, देवता सेहो यै रुप के देख के लेल आकाक्षां करै हय ॥५२॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥

जै प्रकार तु हमरा देख ल, वै प्रकार चतुर्भुज रुपबाला हम, नै बेदो स, नै तप स, नै दान स आउर नै यज्ञ स सेहो देखल जा सकै छी ॥५३॥

भक्यात्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥

परन्तु हे अर्जुन । अनन्य भक्ति स यै प्रकार चतुर्भुज रुपवाला हम प्रत्यक्ष देखै के लेल वा प्राप्त होई के लेल सेहो सुलभ छी ॥५४॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥

हे अर्जुन । जे मनुस्य केवल हमरे लेल सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मो के करै वाला हय, हमर परायण हय, आसक्ति रहित हय, आउर सम्पूर्ण जीव जन्तुयों मे वैरभाव स रहित हय उ अनन्य भक्तियुक्त हमर भक्त हमरे प्राप्त हेतै ॥५५॥

ॐ तत्सदितिश्रीमभ्द्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ।
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरुपदर्शनयोगोनामै एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अध्याय -१२
अथद्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥

अर्जुन कहलकै - जे अनन्य प्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकार निरन्तर अपने के भजन-ध्यान मे लाइग क अपन सगुन रुप परमेश्वर के आउर दोसर जे निराकार ब्रह्म के सेहो अति श्रेष्ठभाव स भजै हय - वै दुनु प्रकार के उपासक सब में अधिक उत्तम योगवेता के हय ? ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥

श्री भगवान कहलन - हमरा मन मे बसा क निरन्तर भजन ध्यान मे लगा क जे भक्तजन अत्यन्त श्रद्धा स हम सगुण रुप परमेश्वर के भजै हय, उ हमरा योगीयो मे अत्ति उत्तम योगी मान्य हय ॥२॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कुटस्थमचलं ध्रुवम् ॥

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

लेकिन जे साधक इन्द्रि सब के बश मे क क मन बुद्धि स दूर सर्व व्यापी, अकथनीय स्वरुप आउर सदैव एकेतरह रहैवाला, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी, सचिदानन्दघन ब्रह्म के सदैव ध्यान करते भजै हय, उ सब मे समानभाव वाला योगी हमरे मात्र प्राप्त होइ हय ॥३-४॥

कलेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।

सच्चिदानन्दघन निराकर ब्रह्म मे आसक्त चितवाला पुरुष सब के साधन मे परिश्रम बहुत हय, किया कि देहधारण करैवाला के अव्यक्त के उपासना कठिन लगै हय ॥५॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥

यै द्वारे हमर परायण रहै वाला भक्तजन सम्पूर्ण कर्मो के हमरे मे अर्पण क क हम सगुणरुप परमेश्वर के भक्तियोग स सदैव चिन्तन करते भजै छय ॥६॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशिचेतसाम् ॥

हे अर्जुन । हमरा मे चितलगवै बाला भक्त सब के हम जल्दी सेहो संसार - समुद्र स उद्धार करै छी ॥७॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बृद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

हमरा मे मन आउर बुद्धि के लगा ब येकर वाद तु हमरे मे निवास कर ब, यै मे शंका नै ॥८॥

अथ चितं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥

जदि तु मन के हमरा मे स्थापित करै मे असमर्थ छ त योग स हमरा पबै के लेल अभ्यास कर ॥९॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।

मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥

जदि तु उपरयुक्त अभ्यास मे सेहो असमर्थ हे ब, तब केवल हमरा लेल कर्म करै के सेहो परायण भ जा । यै प्रकार हमरा लेल निष्काम भाव स कर्म सब के करते हमर प्राप्ति स्वरुप सिद्ध के प्राप्त हेतौ ॥१०॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥

जदि यिहो करै में तु असमर्थ छे तब मन बुद्दि पर विजय प्राप्त क क सब कर्म सब के फल के इच्छा छोइर दे ॥११॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्म फलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥

मर्म के नै जाइन क केलहा अभ्यास स ज्ञानश्रेष्ठ हय, ज्ञान स ध्यानश्रेष्ठ हय, आउर ध्यान स कर्म सब के फल के त्याग श्रेष्ठ हय, कारण त्याग स तत्काल सेहो परम शान्ति प्राप्त होई हय ॥१२॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रःकरुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःख सुखःक्षमी ॥
संतुष्ट सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मध्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्त्तः स मे प्रियः ॥

जे पुरुष द्वेष भाव स दूर, स्वार्थ स दूर, सब के प्रेमी आउर दयालु हय व ममता स दूर, अहंकार स दूर, लालसा स दूर, सुख दुःख के प्राप्ति के लेल सम आउर क्षमावान हय व सदैव संतुष्ट हय, मन इन्द्रि सब के साथ शरीर के वश मे केने हय आउर हमरा में दृढ निश्चयवाला हय, उ भक्त हमरा प्रिय हय ॥१३-१४॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभ्योद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥

जे नै केकरो उद्विग्न करै हय आउर नै खुद होई हय, जे हर्ष, विषाद, भय आउर उद्वेगादि स दूर हय, उ भक्त हमरा प्रिय हय ॥१५॥

अनपेक्षःशुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

जे पुरुष आकांक्षा स दूर, बाहर भितर स शुद्ध, चतुर पक्षपात स दूर आउर दुःख सब स छुटल हय- उ निष्काम कर्म करै बाला भक्त हमरा प्रिय हय ॥१६॥

योे न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥

जे नै कहियो हर्षित होइ छै नै द्वेष करै छै, नै शोक करै छै, आउर नै कामना, जे शुभ-अशुभ सब कर्मो के त्यागी हय, उ भक्त हमरा प्रिय हय ॥१७॥

समःशत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥

जे शत्रु-मित्र आउर मान-अपमान मे सम हय, तथा सर्दी-गरमी आउर सुख-दुख आदि द्वन्द सब मे बराबर हय आउर आसक्ति स दूर हय, जे निन्दा आउर स्तुति के समान समझै बाला, मननशील आउर सदैव सन्तुष्ट रहै हय, आउर ममता तथा आसक्ति स दूर हय उ स्थिरबुद्धि भक्त हमरा प्रिय हय ॥१८-१९॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥

लेकिन जे श्रद्धायुक्त पुरुष हमर परायण भ क यै उपर कहल गेल धर्ममय अमृत के निष्काम प्रेमभाव स सेवन करै हय, उ भक्त हमरा अतिशय प्रिय हय ॥२०॥

ॐ तत्सदितिश्रीभद्भगवद्गीतासूवनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नामद्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अध्याय -१३
अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्री भगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यमिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥

श्री भगवान् कहलन - हे अर्जुन ! यी शरीर "क्षेत्र"कहल जाय हय आउर जे यै तत्व के जनै छै, ओकरा 'क्षेत्रज्ञ'कहै हय ॥१॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥
तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारी यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन में श्रृणु ॥

तु सब क्षेत्र सब में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा हमरे जान । उ क्षेत्र जे आउर जेना हय, जे विकारबाला हय, आउर जै कारण स जे भेलै, व उ क्षेत्रज्ञ जे आउर जै प्रभाववाला हय, उ सब हमरा स संक्षेप मे सु न ॥२-३॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमिद्भर्विनिश्चितैः ॥

यी क्षेत्र आउर क्षेत्रज्ञ के तत्व ऋषियों स बहुत प्रकार स कहल गेल हय । विविध वेदमन्त्रों व ब्रह्मसूत्र के पद सब स सेहो कहले गेल हय ॥४॥

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकार मुदाहृतम् ॥

पाँच महाभूत, अंकार, बुद्धि आउर मूल प्रकृति व दश इन्द्रियो, एक मन आउर पाँच इन्द्रियों के विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रुप, रस, आउर गन्ध व इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल-देहके पिण्ड, चेतना आउर धृति के क्षेत्र कहल गेल ॥५-६॥

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥

श्रेष्ठता के अभिमान आउर दम्भ के अभाव, कुनो जीव के नै सतेनाई, क्षमाभाव, मन-वाणी आदि के सरलता-श्रद्धा भक्तिसहित गुरु के सेवा, बाहर-भितर के शुद्धि, मन के स्थिरता आउर मन-इन्द्रियों सहित शरीर के निग्रह ॥७॥

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदु:खदोषानुदर्शनम् ॥

भोगो मे आसक्ति आउर अहंकार के अभाव, जन्म, मृत्यु जरा, रोग, दुःख आदि दोष सब के विचार नै करनाइ ॥८॥

असक्तिरनभिष्वङ्ग पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

पुत्र, स्त्री, घर, आउर धन आदि मे आसक्ति के अभाव, ममता के नै होनाई व प्रिय आउर अप्रिय के प्राप्ति मे सदैव सेहो चित के सम रहनाई ॥९॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

हम परमेश्वर मे अनन्य योग के साधन स अटलभक्ति तथा एकान्त आउर शुद्ध स्थान मे रहै के स्वभाव आउर विषयी मनुष सब स प्रेम के नै होनाई ॥१०॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

अध्यात्मज्ञान मे नित्य स्थिति आउर तत्वज्ञान स परमात्मा के ही देखनाई - यी सब ज्ञान छै। आउर जे यै स विपरीत हय, उ अज्ञान हय ॥११॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥

जे जनै योग्य हय व जेकरा जाईन क परमानन्द प्राप्त होई छै, ओकरा अब कह ब उ अनादि परमब्रह्म नै त सत कहल जेतै आउर नै तअसत ॥१२॥

सर्वत:पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वत:श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

उ सब ओर हाथ - पैर वाला, सब ओर नेत्र, सिर ओर मुखवाला व सब ओर कानवाला हय। कारण उ संसार में सब के व्याप्त क क स्थित हय ॥१३॥

सर्वेन्द्रियगुणाभांस सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥

उ सम्पूर्ण इन्द्रियो के विषय सब के जनैवाला हय, लेकिन वास्तव मे सब इन्द्रियों स दूर हय। आसिक्त स दुर भेलो के करण सब के धारणा-पोषण करै वाला आउर निर्गुण भेला पर सेहो गुण सब के भोगै बाला हय ॥१४॥

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥

उ सब भूत सब के बाहर-भीतर परिपूर्ण हय, आउर चर-अचरो वेहे हय। उ सूक्ष्म भेला पर सहज बोधगम्य नै, लेकिन ज्ञानियो के नजदीक आउर अज्ञानियो स दूर हय ॥१५॥

अविभक्तं च भुतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥

उ परमात्मा अखण्ड रुप स अकाश के सदृश परिपूर्ण भेला पर सेहो चराचर सम्पूर्ण भूत सब मे विभक्त - जेका स्थित प्रतीत होई छै। उ परमात्मा विष्णुरुप स धारण पोषन करै वाला आउर रुद्ररुप स सब के संहार करै वाला ब ब्रह्मा रुप स सब के उत्पन्न करै बाला हय ॥१६॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

उ परब्रह्म ज्योति सब के ज्योति एवं माया स बहुत दूर कहल जाय छै। उ परमात्मा बोधस्वरुप, जनै के जोग्य वा तत्वज्ञान स प्राप्त करै के योग्य हय आउर सब के हृदय मे विशेषरुप स स्थित हय ॥१७॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावयोपपद्यते ॥

यै प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान आउर जनै योग्य परमात्मा स्वरुप के संक्षेप मे हमरा स कहल गेल। हमर भक्त येकरा तत्व स जाइन क हम स्वरुप के प्राप्त होइ छय ॥१८॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥

प्रकृति आउर पुरुष - यी दुनु के सेहो तु अनादि जान आउर राग - द्वेषादि विकार सब के तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थ सब के सेहो प्रकृति स उत्पन्न भेल जान ॥१९॥

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतु:प्रकृतिरुच्चयते ।
पुरुषः सुखदुःखनां भोक्तृत्वे हेतुरुच्ययते ॥

कार्य (अकाश, वायु, अग्नि, जल आउर पृथ्वी तथा शब्द, स्पर्श, रुप, रस गन्ध-) येकर नाम कार्य हय । आउर करण (बुद्धि, अहंकार,आउर मन तथा श्रोत, त्वचा, रसना, नेत्र, आउर घ्राण एवं बाक्, हस्त, पाद, उपस्थ आउर गुदा) यै १३ के नाम करण हय। के उत्पन्न करै अभिप्राय स प्रकृति कहल जाई छै आउर जीवात्मा के सुखदुख के भोक्तापन वा भोगै के हेतु कहल जाइ छय ॥२०॥

पुरुष:प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥

प्रकृति मे स्थित जीव प्रकृति स उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थ सब के भोगै हय आउर गुण सब के साथ सेहो नीमन खराब योनी सब मे जन्म लै के कारण हय ॥२१॥

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥

यै देह-शरीर मे स्थित यी आत्मा वास्तव में परमात्मे हय । वेहे साक्षी भेलाह स उपद्रष्टा आउर यथार्थ सम्मति दै वाला भेला स अनुमन्ता, सब के धारण-पोषण करै वाला भेला स भर्ता, स्वामी भेला स महेश्वर आउर सच्चिदानन्दघन भेला स परमात्मा हय ॥२२॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥

यै प्रकार पुरुष के आउर गुण सब के सहित प्रकृति के जे मनुस्य तत्व स जनै हय उ सब प्रकार स कर्तव्य कर्म कैरतो फेरो नै जन्मै हय ॥२३॥

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।

अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥

वै परमात्मा के कुनो-कुनो मुनस्य त शुद्ध भेल सुक्ष्म बुद्धि स ध्यान के माध्यम स देखै छै, अन्य कुनो-कुनो ज्ञानयोग के माध्यम स आउर दोसर कुनो-कुनो कर्मयोग के माध्यम स देखै छै आउर प्राप्त करै छय ॥२४॥

अन्ये त्वेवमजानन्तःश्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥

परन्तु यै स दोसर अर्थात् जे मन्द बुद्धि बाला हय उ यै प्रकार नै जाईन क तत्व के जनैवाला स सुईने क सेहो उहे अनुसार उपासना करै छय ॥२५॥

यावत्सञ्जायते किचिञ्त्सत्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रसंयोगात्तद्विद्वि भरतर्षभ ॥

हे अर्जुन ! जते सब जीव छै, ओकरा सब के तु क्षेत्र आउर क्षेत्रज्ञ के संयोग स मात्र उत्पन्न जा न ॥२६॥

समं सर्वेषु भुतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यःपश्यति स पश्यति ॥

जे पुरुष नाश होईतो सब चराचर भूत सब मे परमेश्वर के नाशरहित आउर सम्भाव स स्थित देखै छै, वेहे वास्तविक देखै छय ॥२७॥

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

किया की जे पुरुष सब मे सम्भाव स स्थित परमेश्वर के देखैत अपना काम सब व विकार सब स खुद के नाश नै करे हय, उ परम गति के प्राप्तहोई हय ॥२८॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यःपश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥

आउर जे पुरुष सम्पूर्ण कर्मो के सब प्रकार स प्रकृतिके माध्यम स केलहा मानै हय आउर खुद के अकर्ता मानै हय, वेहे यथार्थ देखै हय ॥२९॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥

जै समय यी पुरुष भूत सब के अलग अलग भाव सव के एक परमात्मा मे सेहो स्थित देखै हय वही बखत उ सच्चिदानन्दघन ब्रहम के प्राप्त भ जाइ हय ॥३०॥

आनादित्वान्निगुर्णत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥

हे अर्जुन ! अनादि आउर निर्गुण यी अविनाशी परमात्मा शरीर मे स्थित भेला पर सेहो वास्तविक मे नै त कुछ करै छय आउर नै आकांक्षा रखै छय ॥३१॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥

चारै ओर व्याप्त आकाश सूक्ष्म होई के कारण लिप्त नै होई छै ओनाही देह मे स्थित आत्मा निर्गुण होई के कारण देह के गुण सब स लिप्त नै होई छय ॥३२॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ।

हे अर्जुन ! जै प्रकार एकेटा सूर्य यै सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रकाशित करै छै, वही प्रकार स एकेटा आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र के प्रकाशित करै छै अर्थात शरीर के संचालित करै छय ॥३३॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ।

यै प्रकार क्षेत्र आउर क्षेत्रज्ञ के भेद के तथा प्रकृति स मुक्त होई वाला जे पुरुष तत्व स जनै छै, उ परमब्रह्म परमात्मा के प्राप्त होई छय ॥३४॥

ॐ तत्सदितिश्रीभदगगवदगीतासूपनिषत्सु, ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्र-क्षेत्रविभागयोगो नाम त्रमोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अध्याय -१४

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्री भगवानुवाच

परं भूयःप्रवक्ष्यामि ज्ञानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥

श्री भगवान कहलन - ज्ञान सब मे अति उत्तम वै परम ज्ञान के हम फेरो कह ब, जेकरा जाईन क मुनी सब यै संसार स मुक्त भ क परम सिद्धि के प्राप्त भ गेल छय ॥१॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम सार्धम्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥

यै ज्ञान के धारण क क हमर स्वरुप के प्राप्त भेल पुरुष श्रृष्टि के आदि शुरु मे फेरो उत्पन्न नै हेतै आउर प्रलयकाल मे सेहो व्याकुल नै हेतै ॥२॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभुतानां ततो भवति भारत ॥

हे अर्जुन । हमर महत् - ब्रह्मरुप मूल प्रकृति सम्पूर्ण भूत सब के योनि हय आउर हम वै योनि में चेतन समुदायरुप गर्भ के स्थापना करै छि। वै जड़ चेतन के संयोग स सब भूत सब के उत्पति होई छय ॥३॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदःपिता ॥

हे अर्जुन। नाना प्रकार के सब योनी सब मे जते मूर्ति सब वा शरीर धारी प्राणी उत्पन्न होई छय, प्रकृति त वै सब के गर्भ धारण करैवाला माता हय, आउर हम बीज के स्थापति करै वाला पिता छी ॥४॥

सत्वं रजस्तम इति गुणाःप्रकृतिसम्भवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥

हे अर्जुन ! सत्वगुण त रजोगुण आउर तमोगुण अविनाशी जीवात्मा के शरीर मे बन्है हय ॥५॥

तत्र सत्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥

हे निष्पाप । वै तीनु गुण सब मे सत्वगुण त निर्मल होई के कारण प्रकाश करै वाला आउर विकास रहित हय, उ सुख आउर ज्ञान के अभिमान स बन्है हय ॥६॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥

रागरुप रजोगुण के कामना आउर आसक्ति स उत्पन्न जाईन ले । उ यै जीवात्मा के कर्मो आउर ओकर फल के सम्बन्ध स बन्है हय ॥७॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥

सब देहाभिमानि सब के मोहित करै वाला तमोगुण के अज्ञान स उत्पन्न जाइन ले । उ यै जीवात्मा के प्रमाद, आलस्य आउर निद्रा के माध्यम स बन्है हय ॥८॥

सत्वं सुखे संजयति रजःकर्माणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमःप्रमादे सञ्जयत्युत ॥
रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत ।
रजः सत्वं तमश्चैव तमः सत्वं रजस्तथा ॥

सत्वगुण सुख मे लगै हय, रजोगुणकर्म मे तथा तमोगुण प्रमाद मे लगै हय । रजोगुण आउर तमोगुण के दाईव क सत्वगुण, सत्वगुण आउर तमोगुण के दाईव क रजोगुण बढै हय, ओनाही सत्वगुण आउर रजोगुण के दाईव क तमोगुण बढै छय ॥९-१०॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा-तदा विद्याद्विवृद्धं सत्वमित्युत ॥

जै समय देह, अन्तकरण आउर इन्द्रि सब मे चेतनता आउर विवेकशक्ति उत्पन्न हेतै वै समय एना जान चाहि कि सत्वगुण बैढ रहल हय ॥११॥

लोभःप्रवृत्तिरारम्भःकर्मणामशमः स्पृहा ।
राजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥

रजोगुण के बडला पर लोभ के प्रवृति, स्वार्थ बुद्धि स कर्म सब मे सकाम भाव, अशान्ति आउर विषय भोग सब के लालसा उत्पन्न होइ छय ॥१२॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥

तमोगुण के बडला पर अन्तःकरण आउर इन्द्रि सब मे मलीनता, कर्तव्य-कर्मो मे अप्रवृति, प्रमाद आउर निन्द सब मोहिनी वृति सब उत्पन्न होइ छय॥१३॥

यदा सत्वे प्रवृध्दे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥

जब मनुस्य सत्वगुण के वृद्धि मे मृत्यु के प्राप्त होई छै, तब त उत्तमकर्म करै बाला सब के निर्मल दिव्य स्वर्गादि लोक सब के प्राप्त होई छय ॥१४॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मुढयोनिषु जायते ॥

रजोगुण के उदयकाल मे मरैबाला आसक्तिबाला मनुस्य सब मे उत्पन्न होई छय, तथा तमोगुण के बडला पर मरलाहा मनुस्य कीट, पशु आदि निम्न योनि सब में जन्म पबै छय ॥१५॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसःफलम् ॥

श्रेष्ठ कर्म सब के त सात्विक अर्थात् सुख ज्ञान आउर वैराग्य आदि निर्मल फल मिलै छय, राजस कर्म के फल दुःख एवं तामस कर्म के फल अज्ञान कहल गेल हय ॥१६॥

सत्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥

सत्यगुण स ज्ञान उत्पन्न होइ छय, रजोगुण स लोभ तथा तमोगुण स आलस्य आउर अज्ञान उत्पन्न होइ छय ॥१७॥

उर्ध्वं गच्छति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्थाअधो गच्छन्ति तामसाः ॥

सत्वगुणी स्वर्गादि उच्च लोक सबमे जाई छय, रजोगुणी मनुस्य लोक मे सेहो रहै छै आउर तामस पुरुष नीच योनियों के तथा नरकों के प्राप्त होइ छय ॥१८॥

नान्यं गुणेभ्य:कर्तारं यदस द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति। ॥

जे द्रष्टा तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य केकरो कर्ता नै देखै छय आउर तीनों गुणों स हैट क हम परमात्मा के तत्व स जनै छय, उ हमर स्वरुप के प्राप्त होइ छय ॥१९॥

गुणानेताननीत्य त्रिन्देही दे हसमुद्भवान् ।
जन्मृत्युजरादु: खैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥

एहन व्यक्ति उत्पति के कारण रुप यै तीनों गुणों के पार क क जन्म, मृत्यु बृद्धावस्था आउर सब दु:ख सब स मुक्त भ क परमानन्द के प्राप्त होई छय ॥२०॥

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचार: कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥

अर्जुन कहे हय यै तीनु गुण सब स अतीत पुरुष कुन-कुन लक्षण सब स युक्त होई छय आउरो कुन प्रकारके आचरण सब बाला होई हय । हे प्रभो! मनुस्य कुन उपाय स यै तीनु गुणसब स मुक्त होइ हय ॥२१॥

श्रीभगवानुवाय

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥

श्री कृष्णा कहलन - हे अर्जुन । सत्वगुण के कार्यरुप प्रकाश, रजोगुण कार्यरुप प्रवृति तथा तमोगुण के कार्यरुप मोह हय । येकरा प्रबल होई मे जे त्रास न पौलकौ आउर नै सेहो निवृत भेला पर ऐकर इच्छा करे उहे व्यक्ति गुणातीत कहल जाई हय ॥२२॥

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥

जे गुणों के प्रभाव स विचलित नै हेते आउर गुणे गुणो में बरत रहै हय, येनाही सम्भैत परमात्मा मे एकीभाव स स्थित रहै हय ॥२३॥

समदु:खसुख: स्वस्थ: समलोष्टाश्मकाञ्चन: ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुति: ॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥

जे सदैव आत्मभाव मे स्थित दुःख-सुख के समान समझैवाला, ज्ञानी, प्रिय व अप्रिय के बराबर मानै वाला अपन निन्दा-स्तुति सेहो मे समान भाव वाला हय । जे मान आउर अपामन मे, मित्र आउर वैरी के प्रति सम हय एवं सम्पूर्ण कार्यो मे कर्तापन के भाव रहित हय, उ पुरुष गुणातीत कहल जाई हय ॥२४-२५॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

आउर जे पुरुष हमरा सदैव भजै छय उहो यै तीनु गुण सब के लांइघ क सचिनन्दघन ब्रह्म के प्राप्त करै जोग बैन जाई हय ॥२६॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥

कारण वै अविनाशी परब्रह्म के, अमृत के,

नित्य धर्म के आउर अखण्ड आनन्द के आश्रय हमही छी ॥२७॥

ऊँ तत्सदिति श्रीमदभगवदगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे, श्रीकृष्णार्जुसंवादे गुणत्रय विभागयोगो नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अध्याय -१५

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्री भगवानुवाच

उर्ध्वमूलमधःशाखश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

श्री भगवान कहलन - आदि पुरुष परमेश्वररुप मूल बाला आउर ब्रह्मरुप मुख्य शाखा बाला संसाररुप पीपल के वृक्ष के अविनाशी कहै छय । वेद जेकर पता हय, वै संसाररुप वृक्ष के जे पुरुष मूल सहित तत्व स जनै हय, उहे वेद के जनै वाला हय ॥१॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ॥
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥

यी संसारवृक्ष के तीनो गुणों रुपी जल स बढैवाला एवं विषय भोग रुप कोपलों बाली देव, मनुस्य आउर तिर्यक सब योनिरुप शाखा सब निचा आउर उपर सब जगह फैल गेल छय । मानवलोक मे कर्म के अनुसार बन्है बाला अहंता, ममता, आउर बासनारुप जड़ सब नीचा आउर उपर सब लोक सब मे व्याप्त भ रहल हय ॥२॥

न रुपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो च चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरुढमूल- मसङ्गशस्त्रे दृढेन छित्वा ॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गाता न निवर्तन्ति भूयः ।
तवेम चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतःप्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥

यै संसार वृक्ष के स्वरुप जेना कहने हय, ओना यै अ नै पौतै, कारण नै त येकर आदि हय आउर नै अन्त हय आउर नै येकर बढीया स्थिति हय । तै स यै अहंता, ममता आउर अति दृढ मूलों बाला संसाररुप पीपल के गाछ के दृढ वैराग्यरुप शस्त्र स काईट क वै परम-पदरुप परमेश्वर के भलिभांति खोज चाहि, जै मे गेलहा जीव फेरो घुईम क संसार मे नै औते । जै परमेश्वर स यी पुरातन संसार-वृक्ष के प्रवृति विस्तार के प्राप्तहोई छय

ओहीआदिपुरुष नारायण के हम शरण मे छी - यै प्रकार दृढ निश्चय क क वै परमेश्वर के मननआउर ध्यान कर चाहि ॥३-४॥

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा-
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वान्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाःपदमव्ययं तत् ॥

जेकर मान आउर मोह नष्ट भगेल छय, जे आसक्ति दोष के जीत लेने छय, जेकर परमात्मा के स्वरुप में नित्य ध्यान हय, आउर जेकर कामना सब पूर्णरुप स नष्ट भ गेल हय - उ सुख-दुःख स विमुक्त ज्ञानीजन वै अविनाशी परमपद के प्राप्त होई छय ॥५॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

जै परमपद के प्राप्त भ क जीव घुईम क संसार मे नै अबै, वै स्वयं प्रकाश परमपद के नै सूर्य प्रकाशित क सकै हय, नै चन्द्रमा आउर नै अग्नि सेहो, उहे हमर परमधाम हय ॥६॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

यै शरीर मे स्थित यी सनातन जीवआत्मा हमरे अंश हय, आउर उहे प्रकृति मे स्थित मन आउर पाँचो इन्द्रि सब के आकर्षित करै हय ॥७॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयात्ति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥

वायु गन्ध के स्थान स गन्ध के जेना ग्रहण क क ल जाई हय, ओनाही देहादि के स्वामि जीवत्मा सेहो जै शरीर के त्याग करै हय, वै स मन सहित इन्द्रि सब के ग्रहण क क फेर जै शरीर के प्राप्त होइ छय वही मे ल जाई छय ॥८॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥

यी जीवात्मा आँईख, कान, आउर त्वचा तथा रसना, घ्राण आउर मन के आश्रय क क अर्थात् यै सब के सहारा स मात्र विषय सब के सेवन करै छय ॥९॥

उत्क्रामन्तं क वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥

शरीर के छोईर क जाई वाला के, शरीर मे स्थित भेल के अथवा विषय सब के भोगैत जीवत्मा के अज्ञानीजन नै जनै छय, केवल ज्ञानरुप नेत्रवाला विवेकशील ज्ञानी मात्र तत्व स जनै छय ॥१०॥

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥

यत्न करैवाला योगीजन मात्र अपन हृदय मे स्थित यै आत्मा के तत्व स जनै छय, लेकिन जे सब अपने अन्तकरण के शुद्ध नै केने हय, एहनअज्ञानीजन यत्न करैत रैहतो यै आत्मा के नै जनतै ॥११॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

सूर्य मे स्थित जे तेज सम्पूर्ण जगत् के प्रकाशित करै हय, तथा जे तेज चन्द्रमा मे हय, जे तेज अग्नि मे हय, वै सब के तु हमरे तेज जा न ॥१२॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥

हमही पृथ्वी के रुप मे सब भूतों के धारण करै छी, आउर रसस्वरुप अमृतमय चन्द्रमा भ क सम्पूर्ण वनस्पतियों के पुष्ट करै छी ॥१३॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तःपचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥

हमही सब प्राणियो के शरीर मे स्थित रहै वाला प्राण छी, आउर अपान स संयुक्त वैश्वानर अग्निरुप भ क सब प्रकार के अन्न के पचबै छी ॥१४॥

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो-
मतः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्व सर्वैरहमेव वेद्यो-
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥

हमही सब प्राणियों के हृदय मे अन्तर्यामी रुप मे स्थित छी तथा हमरे स मात्र स्मृति, ज्ञान आउर मोहभंग होई छय। वेदो के माध्यम स हमही जान योग्य छी आउर वेदो के जनैवाला हमही छी ॥१५॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणिभूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥

यै संसार मे नाशवान आउर अविनाशी यी दु प्रकार के तत्व हय। यै सब प्राणियो के शरीर त नाशवान आउर जीवात्मा अविनाशी कहले जाई छय ॥१६॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रमयाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥

यै दुनु स उत्तम त आउर हय जे तीनो लोक मे सब के धारण-पोषण करै हय, जे अविनाशी परमेश्वर कहबै हय ॥१७॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

किया कि हम नाशवान नै छी आउर अविनाशी जीवात्मा स सेहो उत्तम छी, यै खातिर लोक मे आउर वेद मे पुरुषोत्तम नाम स प्रसिद्ध छी ॥१८॥

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥

जे ज्ञानी पुरुष हमरा यै प्रकार तत्व स जनै हय, उ सर्वज्ञ सब प्रकार स सदैव हम वासुदेव परमेश्वर के मात्र भजै हय ॥१९॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुधिमान्स्यात्कृत्यश्च भारत ॥

हे निष्पाप अर्जुन। यै तरह यी अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र हमरे स कहल गेल हय। येकरा तत्व स जाईन क मनुस्य ज्ञानवान आउर कृतार्थ भ जाई छय ॥२० ॥

ऊँतत्सदिति श्रीभदभगवदगीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रै
श्रीकृष्णार्जुन संवादे पुरुषोत्तम योगो नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अध्याय -१६

अथ षोडशोऽध्यायः

श्री भगवानुवाच

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥

श्री भगवान-कहलन-भय के सर्वथा अभाव, अन्तकरण के पूर्ण निर्मलता, तत्वज्ञान के लेल सदैव ध्यान आउर सात्विक दान, इन्द्रि सब के दमन, गुरुजनों के पूजा व अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्म सब के आचरण एवं वेद-शास्त्र सब के पठन-पाठन व भगवान के नाम आउर गुण सब के कीर्तन भजन, स्वधर्म पालन के लेल कष्ट सहन केनाई आउर शरीर तथा इन्द्रिसब के साथ-साथ अन्तकरण के सरलता ॥१॥

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजःक्षमा धृतिःशौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

मन, वाणी आउर शरीर स केकरो कष्ट नै देनाई, यथार्थ आउर प्रियभाषण, अपन अपकार करै बाला पर सेहो क्रोध नै केनाई, कर्म सब मे कर्तापन के अभिमान के त्यागनाई, मन के चंचलता के रोकनाई, निन्दा नै करनाई, दया, अनासक्ति, कोमलता, लोक आउर शास्त्र स विरुद्ध आचारण मे लज्जा आउर व्यर्थ चेष्टा सब के अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, भीतर- बहार के शुद्धि, शत्रुभाव के नै होनाई आउर अभिमान के अभाव-यी सब दैवि-सम्पदा के ल क उत्पन्न भेल पुरुष के लक्षण हय ॥२-३॥

दम्भो दर्पोऽभिमानश्चक्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥

हे पार्थ । दम्भ, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता आउर अज्ञान यी सब आसुरी राक्षसी-सम्पदा के ल क उत्पन्न भेल पुरुष के लक्षण हय ॥४॥

दैवि सम्पद्धिमोक्षाय विबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैविमभिजातोऽसि पाण्डव ॥

दैव सम्पदा मुक्ति के लेल आउर आसुरी राक्षसी सम्पदा धन दौलत बंधै के लेल मानल गेल हय । तै स हे अर्जुन तु शोक नै कर, किया कि तु दैवी-सम्पदा के ल क उत्पन्न भेल छ ॥५॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशःप्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रृणु ॥

हे अर्जुन । यै लोक मे मनुस्य समुदाय दु प्रकार के हय - एगो दैवि प्रवृति वाला आउर दोसर आसुरी प्रवृति वाला वै मे स दैवि प्रवृति वाला त विस्तार पूर्वक कहल गेल, आब तु आसुरी राक्षसी प्रवति वाला समुदाय के विषय मे सुईन ले ॥६॥

प्रवृतिं च निवृतिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥

राक्षसी स्वभाव वाला मनुस्य प्रवृति आउर निवृत्ति दुनु के नै जनै छय । यहि स ओकरा मे नै त शुद्धि हय, नै श्रेष्ठआचारण हय आउर नै सत्यभाषा सेहो ॥७॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥

उ राक्षसी प्रवृति वाला मनुस्य कहैत रहै कि जगत् आश्रय रहित, सर्वथा असत्य आउर बिना ईश्वर के, आप स आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग स उत्पन्न हय- अतः केवल काममात्र येकर कारण हय ॥८॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणःक्षयाय जगतोऽहिताः ॥

यै झुठ ज्ञान के अवलम्बन क क जेकर विवेक नाश भ गेल हय व जेकर बुद्धि मन्द हय, उ सब के अपकार करैवाला क्रूरकर्मी मनुस्य केवल जगत के नाश के लेल मात्र प्रवृत होई छय ॥९॥

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥
चिन्तामपरिमेयां च प्रत्नलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥

उ दम्भ, मान आउर मद स युक्त मनुस्य कुनो प्रकार स पूरा नै होई वाला कामना सब के आश्रय ल क, अज्ञान स झूठ सिद्धान्त सब के ग्रहण क क आउर भ्रष्ट आचरण सब के धारण क क संसार मे बिचरै हय । उ मृत्यु पर्यन्त असंख्य चिन्ता सब के आश्रय लै वाला, विषय भोग सब के भोगै मे तत्पर आउर भोग सब के मात्र सुख मानै वाला होई हय ॥१०-११॥

आशापाशशतैर्वद्धाःकामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥

उ आशा के सैखडों स अधिक फांसियो स बान्हल-काम क्रोध के वशीभूत भ क विषय भोग सब के लेल अन्याय पूर्वक पदार्थ के संग्रह करै के चेष्टा करै छय ॥१२॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥
असौ माया हतःशत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥

उ सोचै हय, कि हम आई यी प्राप्त क लेलि आउर आब यै मनोंरथ के प्राप्त क लेब । हमरा पास येते धन हय, आब यी समान हमर भ जेतै, उ दुस्मन हमरा स मारल गेल आउर ओई दोसर दुस्मन सब के सेहो हम माईर देबै । हम भगवान छी, एश्वर्य के भोगै बाला छी । हम सब सिद्धि सब स युक्त छी आउर बलवान तथा सुखी छी ॥१३-१४॥

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्यइत्यज्ञानविमोहिताः ॥
अनेकऔचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताःकामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

हम बडा धनिक आउर बढका कुटुम्ब वाला छी । हमरा जेका दोसर के हय ? हम यज्ञ करै छी आउर आमोद-प्रमोद (रंग रलिया) करै छी । यै प्रकार अज्ञान स मोहित व भ्रमित चितवाला मोहरुप काल में बनलहा आउर विषय भोग सब मे अत्यन्त आसक्त राक्षसी मनुस्य अपवित्र नरक मे गिरै

छय ॥१५-१६॥

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥

उ अपना के श्रेष्ठ मानै बाला घमण्डी, धन आउर मान के मद मे ग्रस्त रैह क पाखण्ड स शास्त्रविधि स दूर यज्ञ आउर कर्म करै छै ॥१७॥

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभयसूयकाः ॥

उ अहंकार, बल, घमण्ड, कामना आउर क्रोध सब स युक्त आउर दोसर सब के निन्दा करै वाला अपन आउर दोसर के शरीर में स्थित हम अन्तर्यामी स दुश्मनि करै बाला होई छय ॥१८॥

तानहं द्विषतःक्रुरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्त्रमशु भासुरीष्वेव योनिषु ॥

वै द्वेष करै वाला पापाचारी आउर-क्रूरकर्मी नराधर्मो के हम संसार मे बेर-बेर राक्षसि योनी सब मे सेहो मात्र डालै छी ॥१९॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥

हे अर्जुन । यै प्रकार उ मुढ हमरा नै प्राप्त भ क बेर-बेर राक्षसी योनी सब के प्राप्त होइ हय, आउर फेरो घोर नरक मे परै हय ॥२०॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामःक्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

काम, क्रोध व लोभ-यी तिनु नरक के द्वार हय । यी तिनु त आत्मा के गिरवै वालाआउर त्यागै जोग हय ॥२१॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्धारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनःश्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥

हे अर्जुन । यी तिनु नरक के द्वार सब स मुक्त भेल मनुस्य कल्याणकारी आचरण करै हय, जै स उ परमगति व हमरा प्राप्त भ जाई हय ॥२२॥

यःशास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

जे पुरुष शास्त्रविधि के त्याग क अपने इच्छा स मन-मानाआचरण करै हय, उ नै सिद्धि के प्राप्त करै हय, नै परमगति के आउर नै सुख के सेहो ॥२३॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वां शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥

यै स तोरा लागी यै कर्तव्य आउर अकर्तव्य के व्यवस्था में शास्त्रमात्र प्रमाण हय । येना जाईन क तू शास्त्रविधि स नियत कर्म मात्र कर ॥२४॥

ऊँतत्सदितिश्रीभदभगवदगतिा सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुन संवादे देवासुर सम्पदविभागयोगे नामषोडशोःध्यायः ॥१६॥

अध्याय -१७

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्वमाहोरजस्तमः ॥

अर्जुन कहल कै - हे पुरुषोत्तम । जे मनुस्य शास्त्रों के विधि के त्याइग क, लेकिन पूर्ण श्रद्धा स देवता सब के पूजा करै हय, ओकर स्थिति केहन हय ? सात्विक हय राजसी या फेरो तामसी? ॥१॥

श्री भगवानुवाच

त्रिविधा भवतिश्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां श्रृणु॥

श्री भगवान कहलन - मनुस्य सब के यी शास्त्रीय संस्कार सब स अलग स्वभाविक श्रद्धा सात्विकी, राजसी अथवा तामसी तिनु प्रकार के भ सकै हय । ओकरा तु हमरा स सुईन ल्या ॥२॥

सत्वानुरुपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥

हे भारत । सभे मनुस्य सब के श्रद्धा ओकरा अन्तःकरण के अनुरुप होइ छय । येही स जे मनुस्य जेहन श्रद्धा वाला हय, उ खुद सेहो ओहने हय ॥३॥

यजन्ते सात्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥

सात्विक पुरुष देवता सब के पुजै छय, राजस पुरुष यक्ष आउर राक्षस सब के तथा अन्य जे तामस पुरुष हय, उ प्रेत आउर भूत सब के पुजै छय ॥४॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भांहङ्कारसंयुक्ताःकामरागबलान्विताः ॥
कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्धयासुरनिश्चयान् ॥

जे मनुस्य शास्त्र विधि छोड़इर क मात्र मनकल्पित घोर तप के तपै हय तथा दम्य आउर अहंकार स युक्तएवं कामना आसक्त आउर बल के अभिमान स सेहो युक्त हय । जे अपन शरीर आउर अन्तःकरण मे स्थित हम परमात्मा के सेहो कृश करै वाला हय, वै अज्ञानी सब के तु राक्षसी स्वभावबाला
बु झ ॥५-६॥

अहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदभिमं श्रृणु ॥

भोजन सेहो सब के अपन-अपन प्रकृति के अनुसार तीन प्रकार के प्रिय होई हय । आउर ओनाही यज्ञ, तप आउर दान सेहो तीन-तीन प्रकार के होई हय । ओकर यी अलग अलग भेद के तु हमरा स सु न ॥७॥

आयुः सत्वबलारोग्य-सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या- आहाराः सात्विकप्रियाः ॥

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख आउर प्रीति के बढवै बाला, रस स भरल, निमन आउर स्थिर रहै बाला व स्वभाव स सेहो मन के प्रिय लगै बाला, भोजन करै बाला पदार्थ सात्विक मनुस्य सब के प्रिय होई हय ॥८॥

कट्वम्ललवणत्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥

कड़ू, खट्टा, लवणयुक, बहुत गरम, तिखा, सुखल, दाह करक आउर दुःख, चिन्ता, तथा रोग सब के उत्पन्न करै बाला भोजन राजस मनुस्य सब के प्रिय होइ हय ॥९॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम ॥

जे भोजन अधापाकल, सुखल, दुर्गन्ध स भरल, बसीया आउर खेला के बाद बचल (उच्छिष्ट) हय, तथा जे अपवित्र सेहो हय, ओहन भोजन तामस मनुस्य सब के प्रिय होई हय ॥१०॥

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्येमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः ॥

शास्त्र विधि स सदैव यज्ञ करनाई कर्तव्य हय, एना मानै बाला आउर फल के आकांक्षा स दूर रह बाला व्यक्ति सब स जे यज्ञ केल जाई हय उ सात्विक हय ॥११॥

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्येत भरत श्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥

फल भेटतै दृष्टि मे राईख क वा दम्यपूर्वक जे यज्ञ केल जाई छै वै यज्ञ के तु राजस जाईन ल्या ॥१२॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥

शास्त्र विधि स हीन अन्नदान नै क क, विना मन्त्रके विना दक्षिणा के आउर बिना श्रद्धा के केल गेल यज्ञ के तामस यज्ञ कहै छय ॥१३॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

देवता, ब्राह्मण, अपना स बढ्का आउर ज्ञानी सब के पुजन तथा पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य आउर अहिंसा के आचरण शरीर सम्बन्धि तप कहल जाय छय ॥१४॥

अनुद्वचेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

जे उद्वेग नै करैप बाला, प्रिय आउर हितकारक सत्य भाषण हय तथा जे वेद शास्त्र सब के पठन एवं परमेश्वर के नाम जप के अभ्यास हय, उहे वाणी सम्बन्धी तप कहल जाई हय ॥१५॥

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

मन के प्रसन्नता, शान्त भाव, भगवदचिन्तन करै के स्वभाव, मन के निग्रह आउर अन्तःकरण के भाव सब के सहि सही पवित्रताः येकरा मन सम्बन्धि तप कहल जाई हय ॥१६॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्विकं परिचक्षते ॥

फल के नै चाहै बाला योगी स पूर्ण श्रद्धा स केल गेल तप के सात्विक तप कहै छय ॥१७॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥

जे तप कुनै स्वार्थ सत्कार, मान आउर पूजा के लेल केल जाय हय,उ अनिश्चित (जे फल के होनाइ नै होनाइ बराबर)क्षणिक फलवाला तप राजस कहल गेल हय ॥१८॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडयाक्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥

जे तप मुढता पूर्वक, हठ स, मन, वाणी आउर शरीर के पीडा साथे अथवा दोसर के अनिष्ट करै के लेल करल जाई हय उहे तप तामस कहल जाई हय ॥१९॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे कले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥

दान देनाई कर्तव्य हय - ऐना माईन क जे दान निस्वार्थ भाव स देल जाई हय उ दान सात्विक कहल गेल हय ॥२०॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥

परन्तु जे दान खुद के मन के दुखा क प्रत्युपकार के प्रयोजन स वा फल प्राप्त हेत के दृष्टि में राईख क देल जाई हय, उ दान राजस कहल जाय छय ॥२१॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रे भ्यश्च दीयते ।
असत्कृ तमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

जे दान सत्कार नै क क वा तिस्कार पूर्वक आउर कुपात्र के देल जाई हय, उ तामस हय ॥२२॥

ऊँ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणास्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥

ऊँ तत् सत् यी तीन प्रकार के सश्चिदानन्दघन ब्रह्म के नाम कहल गेल हय, ओही स सृष्टि के शुरु मे ब्राह्मण आउर वेद व यज्ञादि रचल गेल छेलै ॥२३॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥

येहि स श्रेष्ठमनुस्य सब स शास्त्रविधि स सदैव यज्ञ, दान आउर तपरुप काम सब सदैव "ऊँ" यै परमात्मा के नाम के उचारण क क मात्र शुरु केल जाई छै ॥२४॥

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्चविविधाःक्रियन्ते मोक्षकाङक्षिभिः ॥

तत् अर्थात 'तत' नाम स कहल जाई बाला परमात्मा के सेहो यी सब हयायै भाव स फल के नै चाईह क बहुत प्रकार के यज्ञ आउर तप रुप क्रिया सब तथा दान रुप क्रिया सब कल्याण के विचार रखै वाला पुरुष सब स केल जाय छय ॥२५॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दःपार्थ युज्यते ॥

'सत' परमात्मा के यी नाम सत्यभाव मे आउर श्रेष्ठभाव में प्रयोग केल जाई छै व उत्तमकर्म मे सेहो 'सत' शब्द के प्रयोग केल जाइ छै ॥२६॥

यज्ञे तपसिदाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥

सात्विक यज्ञ, तप आउर दान मे जे स्थिति छै, उहे 'सत' कहल जाई छै आउर वै परमात्मा के लेल केल गेल कर्म सेहो 'सत' कहल जाई छै ॥२७॥

अश्रद्धया हुतं दतं तपस्तप्तं कृतं चयत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

हे अर्जुन बिना श्रद्धा के केल गेल हवन, दान एवं तप आउर जे कुछो केल गेल शुभ कर्म हय असत् हय, तै स उ नै त यै लोक में लाभ दायक हय, आउर नै मरै के वाद सेहो ॥२८॥

ऊँतत्सदितिश्री भदभगवदगीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे श्रद्धात्रयविभागयोगे नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अध्याय-१८
अथाष्टादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

सन्न्यासस्य महाबाहो तत्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनियषूदन ॥

अर्जुन कहलकै - हे वासुदेव ! हम संस्यास आउर त्याग के तत्व के फरक फरक जा न चाहै छी ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥

श्री भगवान कहलन - बहुतो पण्डित सब त कामना आउर कर्म के त्याग के सन्यास सम्झै छै तथा दोसर सब कर्म सब के फल के त्याग के ॥२॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥

कुनो-कुनो विद्धान कहै हय, जे प्रत्येक कर्म दोष युक्त होई हय । तै स त्यागै के जोग हय । दोसर विद्धान कहै हय । यी यज्ञ, दान आउर तपरुप कर्म त्यागै के योग्य नै हय ॥३॥

निश्चयं श्रृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥

हे पुरुष श्रेष्ठ अर्जुन । संन्यास आउर त्याग यै मे स पहिले त्याग के बारे मे सु न त्याग सात्विक राजस आउर तामस तीनप्रकार के कहल गेल हय ॥४॥

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दांन तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

यज्ञ, दान आउर तप जेहन कर्म त्याग करै के योग्य नै हय, वल्कि यी त अति जरुरी कर्तव्य हय । यी तिनु कर्म सेहो बुद्धिमान सब के पवित्र करै हय ॥५॥

एतान्यपि तु कर्माणि संङ्ग त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यनीति मे पार्थ निश्चतं मतयुत्तमम् ॥

तै स हे पार्थ। यज्ञ, दान आउर तपस्या व अन्य सब कर्तव्य कर्म सब के आसक्ति आउर फल सब के इच्छा त्याईग क क अवश्य कर चाहि, यी हमर मत हय ॥६॥

नियतस्य तु संन्यासःकर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितिः ॥

निषिद्ध (तुच्छ) आउर स्वार्थ स भरल कर्म सब के त्याग केनाई त उचित हय, लेकिन नियत कर्म के त्याग उचित नै। यै स मोह के कारण ओकरा त्याग क देनाई तामस त्याग कहल गेल हय ॥७॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥

जे कुछ कर्म हय, उ सब दुःखरुपे हय - एना जाईन क जदि कोई शारीरिक क्लेश के भय स कर्तव्य कर्म सब के त्याग क दै तब उ एहन राजस त्याग क क त्याग के फल के कुनो तरह सेहो नै पौते ॥८॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्ग त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागःसात्विको मतः ॥

हे अर्जुन। शास्त्रअनुसार कर्म करनाई कर्तव्य हय - यै भाव स आसक्ति आउर फल के त्याईग क क जब कर्म केल जाई हय, उ सात्विक त्याग मानल गेल हय ॥९॥

न द्वेष्टयकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥

जे मनुस्य दुःखप्रद कर्म स द्वेष नै करतै आउर सुखद कर्म मे आसक्त नै हेतै, उ शुद्ध सत्वगुण स युक्त संशय रहित बुद्धिमान आउर सच्चा त्यागी हय ॥१०॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥

शरीर धारी कुनो भी आदमी के लेल सब कर्म सब के त्याग संभव नै, तै स जे कर्मफल के त्यागी हय उ कर्म कैरतौ त्यागी हय ॥११॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणःफलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥

कर्मफल के त्याग नै करैवाला मनुस्य सब के कर्म सब के निमन खराब आउर मिलल-जुरल फल मरै के वाद आवश्य मिलै छै। परन्तु कर्म फल के त्याग क दै वाला मनुस्य सब के कर्म सब के फल कुनो काल मे सेहो नै भोग परतै ॥१२॥

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्येकृतान्तेप्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥

हे महाबाहो ! सम्पूर्ण कर्म सब के सिद्धि के यी पाँच हेतु कर्म सब के अन्त करै के उपाय बतबै बाला सांख्य शास्त्र मे कहल गेल हय, ओकरा तु हमरा स जा न ॥१३॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥

यै विषय में वा कर्म सब के सिद्धि मे अधिष्ठान (जेकर आश्रय कर्म केल जाय) आउर कर्ता वा भिन्न भिन्न प्रकार के करण (इन्द्रि सब एवं कर्म करै के अन्य साधन) एवं विभिन्न प्रकार के अलग-अलग चेष्टा सब आउर पांचमा हेतु (लक्ष्य) देव हय ॥१४॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरितं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥

मनुस्य मन, वाणी, आउर शरीर स शास्त्र-अनुकुल वा विपरीत जे कुनो कर्म करै छै - ओकर उपर उल्लेख पाँच कारण हय ॥१५॥

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥

लेकिन एना भेला पर सेहो जे मनुस्य अशुद्ध, बुद्धि के कारण कर्म सब के होई मे सिर्फ आत्मा के कर्ता सम्झै हय, उ अज्ञानी सही नै समझै हय ॥१६॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥

जै मनुस्य के अन्तःकरण में "हम कर्ता छी" एहन भाव नै हय वा जेकर बुद्धि संसारिक पदार्थ सब आउर कर्म सब मे लिप्त नै हेतै, उ व्यक्ति

केकरो माईर क सेहो वास्तव में नै त मारै हय, आउर नै पाप स बन्है हय ॥१७॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥

जनै वाला ज्ञाता, बतवै बाला ज्ञानी आउर जे जानल गेल हय - उ ज्ञेय - यी तीन कर्म प्रेरणा सब हय । करै बाला कर्ता,
साधन आउर क्रिया यी तीन बस्तु सब कर्म संग्रह कहल जाई छै ॥१८॥

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥

शास्त्र सब मे ज्ञान, कर्म तथा कर्ता, गुण सब के भेद मे तीन-तीन प्रकार के कहल गेल हय, ओकरो तु हमरा स सु न ॥१९॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावभव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तञ्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ॥

जै ज्ञान स मनुस्य अलग-अलग सब भूत सब मे एक नाश नै होय वाला परमात्म भाव के विभाग रहित समभाव स स्थित देखै छै, वै ज्ञान के तु सात्विक जा न ॥२०॥

पृथक्त्वेन तु यञ्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तञ्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥

लेकिन जे ज्ञान अर्थात जे ज्ञान स मनुस्य सम्पूर्ण भूतों मे अलग-अलग प्रकार के विविध भाव सब के फरक फरक देखै छै, ओकरा तु राजस जान ॥२१॥

यतु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्वार्थवदल्पं चतत्तामसमुदाहृतम् ॥

किन्तु जे ज्ञान एक कार्यरुप शरीर मे सेहो सम्पूर्ण के सदृश्य आसक्त हय व जे बिना युक्ति बाला तात्विक अर्थ स अलग आउर तुच्छ हय उ तामस हय ॥२२॥

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषत कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्विकमुच्यते ॥

जे कर्म शास्त्र विधि स निश्चित केल गेल हय आउर कर्तापन के अभिमान स अलग रहै वा फल नै चाहै वाला मनुस्य स बिना आकांक्षा के केल गेल हय, उ सात्विक कर्म हय ॥२३॥

यतु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥

लेकिन जे कर्म बहुत परिश्रम स युक्त होई छै व भोगों के चाहै वाला या अहंकारयुक्त पुरुष स केल जाइ हय ओकरा राजस कहल गेल हय ॥२४॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्ततामसमुच्यते ॥

जे कर्म परिणाम, हानि, हिंसा आउर सामर्थ के नै विचाइर क सिर्फ अज्ञान स आरम्भ केल जाई छै, ओकरा तामस कहल जाई छै ॥२५॥

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्धयसिद्धयोर्निर्विकारः कर्ता सात्विक उच्यते ॥

जे कर्ता, विनम्र, रागरहित, धैर्य आउर उत्साह स युक्त तथा कार्य के सिद्ध भेला पर आउर नै भेला पर समान रहै ओकरा सात्विक कहल जाई छै ॥२६॥

रागी कर्मफलप्रेपसुर्लुब्धो हिसांत्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितःकर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥

जे कर्ता आसक्ति युक्त, कर्म सब के फल के चाहैवाला आउर लोभी व दोसर के कष्ट दै के स्वभाव बाला, अशुद्धचारी आउर हर्ष-शोक स लिप्त हय, ओकरा राजस कहल गेल हय ॥२७॥

अयुक्तःप्राकृतः स्तब्धःशठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥

जे कर्ता अयोग्य अशिक्षित, घमण्डी, धूर्त, दोसर के जीवक के नाश करैवाला व दुःख दै वाला, आलसी आउर काम के टालै-वाला हय ओकरा तामस कहल जाई छै ॥२८॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविघं श्रृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥

हे धनंजय ! आब तु बुद्धि आउर धारणा के गुण सब के अनुसार तीनटा भेद हमरा स पूर्ण रुप मे सु न ॥२९॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कर्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति वुद्धिः सा पार्थ सात्विकी ॥

हे पार्थ ! जे बुद्धि आसक्ति के त्याइग आउर कर्म फल सब के इच्छा नै कर दै छै कर्तव्य आउर अकर्तव्य केभय आउर अभय के शक्ति के तथा बन्धन आउर मोक्ष के ठीक स जनै छै, उ बुद्धि सात्विकी हय ॥३०॥

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥

हे पार्थ ! मनुस्य जै बुद्धि स धर्म-अधर्म के वा कर्तव्य आउर अकर्तव्य के सही स्थिति के नै जाईन पौतै, उ बुद्धि राजसी हय ॥३१॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥

हे अर्जुन । तमोगुण स घेरल बुद्धि अधर्म के सेहो धर्म माइन लै हय व यै प्रकार अन्य सम्पूर्ण पदार्थ सब के सेहो उलटा मानै हय, उ बुद्धि तामसी हय ॥३२॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्विकी ॥

हे पार्थ ! जै मन के एकाग्रता स मनुस्य शुभ सोच सब स मन, प्राण आउर इन्द्रि सब के क्रिया सब के नियन्त्रित करै हय, उ धृति सात्विको हय ॥३३॥

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या घारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥

फल के इच्छा बाला मनुस्य जै धारण शक्ति स अत्यन्त आसक्ति भाव स धर्म, अर्थ, आउर कर्म सब के धारण करै हय, उ धारण शक्ति राजसी हय ॥३४॥

यया स्वप्नं भयं शोक विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्जति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥

दुष्ट बुद्धिबाला मुनस्य निन्द्रा, भय, चिन्ता, दुःख व उन्मनता के नै छोडतै अर्थात धारण केने रहै हय, उ धारण शक्ति तामसी हय ॥३५॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं श्रृणु से भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्रदुःखान्तं च निगच्छति ॥

हे भरत श्रेष्ठ । आब तीन प्रकार के सुख सब के हमरा स सुन । येकरा जाईन क दुःख नाश भ जाई हय ॥३६॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥

भजन, ध्यान, योग आउर परमार्थ जेका कार्य जे शुरु में केला पर कष्ट दै हय, लेकिन परिणाम में अमृत बराबर हय । यै कार्य सब स प्राप्त होईवाला सुख सात्विक कहल गेल हय ॥३७॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥

जे सुख विषय आउर इन्द्रि सब के संयोग स होई छै, उ भोगै समय मे अमृत के बराबर महसूस भेला पर सेहो परिणाम मे बिष के बराबर हय यही स राजस कहल गेल हय ॥३८॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

जे सुख भोगै समय मे व परिणाम में सेहो आत्मा के मोहित करै वाला हय, उ निद्रा, आलस्य आउर प्रमाद स उत्पन्न सुख तामस कहल गेल हय ॥३९॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिःस्यात्नित्रिर्गुणैः ॥

पृथ्वी मे या अकाश मे अथवा देवलोक सब मे कतौ एहन कुनो जीव नै हय, जे प्रकृति स उत्पन्न यै तीनु गुण सब स अलग हेतै ॥४०॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥

हे अर्जुन ! ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों व शुद्रसब के कर्म ओकर स्वभाविक गुण सब स वांटल गेल हय, उ हमरा स सुइन ल्या ॥४१॥

शमो दमस्तपःशौचं क्षन्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

अन्तकरणः के बंधन आउर इन्द्रि सब के दमन केनाई, धर्म पालै के लेल कष्ट सहनाई, बाहर, भितर स पवित्र रहनाई, दोसर के अपराध सब के क्षमा केनाई, मन, इन्द्रि, आउर शरीर के सरल स्वभाव, सीधापन, वेद, शास्त्र, ईश्वर आउर परलोक सब मे श्रद्धा रखनाई, वेद-शास्त्र सब के अध्ययन अध्यापन करनाई/करौनाई आउर परमात्मा के तत्व के चिन्तन ब्राह्मण के स्वभाविक व प्राकृतिक कर्म हय ॥४२॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता आउर युद्ध मे नै भगनाई, दान, देनाई, आउर सामर्थ्य पाव वाला भाव के लेल इच्छा करैत रहनाई क्षत्रिय के स्वभाविक कर्म हय ॥४३॥

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शुद्रस्यापि स्वभावजम् ॥

खेती, गाई पालन आउर इमान्दारी के साथ व्यापार करनाई वैश्य के प्राकृतिक वा स्वभाविक कर्म हय । तथा सब वर्ण सब के सेवा केनाई शुद्र के स्वभाविक कर्म हय ॥४४॥

स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतःसिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥

अपन-अपन स्वभाविक कर्म सब मे तत्परता स लागल मनुस्य केना क भगवत प्राप्ति रुप परम सिद्धि के प्राप्त होई हय, हमरा स सुइन ल्या ॥४५॥

यतःप्रवृतिर्भ‘‘तानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्च सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

जै भगवान व परमेश्वर स सब प्राणि सब के उत्पति भेल हय आउर जे जगत के पालन-पोषण क रहल है वै परमेश्वर के अपन स्वभाविक कर्म सब स पूजा क क मनुस्य परमसिद्धि के प्राप्त होइ छय ॥४६॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥

दोसर के श्रेष्ठतम धर्म स अपन गुण नहियो रह वाला धर्म सेहो श्रेष्ठ हय, कारण अपन धर्म के अनुसार कर्म करै बाला मनुस्य पाप के नै प्राप्त हेतै ॥४७॥

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥

तै द्वारे हे कुन्तीपुत्र !दोष स भरल भेलो स अपन कर्म के नै त्यागना चाहि, कारण सब कर्म कुनो न कुनो दोष स युक्त वा भरल हय ॥४८॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥

आसक्ति आउर फल के इच्छा नै कर वाला, निर्मल वा स्वच्छ बुद्धि व हृदय बाला मनुस्य सव कर्म निवृति वाला उत्तम सिद्धि के प्राप्त होइ छय ॥४९॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥

यै तरह के मनुस्य जै प्रकार स ब्रह्म के प्राप्त करै हय, ओकरा तु संक्षेप मे हमरा स समैभ ल्या ॥५०॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममःशान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

विशुद्ध बुद्धि स पूर्ण, कम भोजन करै वाला, विषय सब के त्याईग क क एकान्त आउर शुद्ध स्थान पर रहै वाला, सात्विक धारण शक्ति के माध्यम स अन्तकरण आउर इन्द्रि सब के संयम क क मन, वाणी आउर शरीर के वश में करै वाला, राग आउर द्वेष के पूर्ण रुप स नाश क क ठीक तरह स

दृढ वैराग्य के आश्रय लै वाला व अहंकार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध आउर परिग्रह के त्याइग क क सदैव ध्यान योग मे परायण रहवाला, ममता स दूर आउर शान्तियुक्त मनुस्य सचिदानन्दघन ब्रह्म मे अभिन्न भाव स स्थित होई वाला पात्र होई हय ॥५१-५३॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

फेरो उ ब्रह्म मे एकीभाव स स्थित, प्रसन्न मन वाला योगी नै त केकरो लेल सोक करै हय आउर नै केकरो आकाक्षां। येहन समभाव वाला योगी हमर अटल भक्ति प्राप्त करै छय ॥५४॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वतः ।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

वै पराभक्ति के माध्यम स उ हम परमात्मा के तत्व स जाईन लै छय वा वै भक्ति स हमरा तत्व स जाईन क तुरन्ते सेहो हमरा मे प्रवेश भ जाई छय ॥५५॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥

हमर अति आसक्त भेल कर्मयोगी त सम्पूर्ण कर्म सब के सदैव करतै सेहो हमरा कृपा स सनातन अविनाशी परमपद के प्राप्त होई छय ॥५६॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चितः सततं भव ॥
मच्चितः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङक्ष्यसि ॥

हे अर्जुन । सब कर्म सब के मन लगा क हमरा मे अर्पण क क वा समबुद्धिरुप योग के अपना क क वा अवलम्बन क क हमर परायण आउर सदैव हमरा में चितवाला भ क तु हमरा कृपा स समस्त संकट वा दुःख सब के एकाएक सेहो पार क जे ब । जदि अहंकार के कारण हमर बचन सब के नै सुन ब तब नष्ट अर्थात् परमार्थ स सेहो भ्रष्ट भ जे ब ॥५७-५८॥

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्प इति मन्यसे ।

मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥

तु अहंकार के आश्रय ल क यी कैह रहल छे कि हमयुद्ध नै करब। तोहर यी निश्चित झूठ हय कारण तोहर स्वभाविक गुण धर्म तोरा जबरदस्ती युद्ध मे लगा दे तौ ॥५९॥

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मो हात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥

हे कुन्ती के वेटा ! जै कर्म के तु मोह के कारण नै कर चाहै छ ओकरो अपन पूर्वकृत स्वभाविक कर्म स बान्हल पराधिन वा दोसर के अधिन भ क करही पर तौ ॥६०॥

इश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशौऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि मायया ॥

कारण शरीर धारण करैवाला सब जीवजन्तु सब के अन्तरयामी परमेश्वर इश्वर अपना माया स ओकर कर्म के अधार पर भ्रमण करवैत सब जीवजन्तु सब के हृदय मे स्थित हय ॥६१॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
ततप्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

हे भारत। तु सब प्रकार स वै परमेश्वर के शरण मे जो। वही परमात्मा के कृपा स मात्र तु परम शान्ति के तथा सनातन परमधाम के प्राप्त हे बे ॥६२॥

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥

यै प्रकार यी अति गोपनीय ज्ञान हम तोरा स कहली य। आब तु यै रहस्ययुक्तज्ञान के पूर्ण तरह ठीक स विचार क क आउर जेनाही चाहे छ तेनाही कर ॥६३॥

सर्वगुह्यतमं भूयःश्रृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥

हमर यै परम रहस्ययुक्त बचन सब के तु फेरो सुईन ले। तु हमर अतिशय वा अतिप्रिय छे। यै स यी परम हितकारक बचन हम तोरा स कैह रहल छी ॥६४॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां मनस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

हे अर्जुन । तु हमरा मे मनवाला छे, हमर भक्त बैन जो, हमरा पूजा कर आउर हमरा प्रणाम कर, ऐना केला स तु हमरे प्राप्त हे बे । यी हम तोरा स सत्य कहै छी, कारण तु हमर अत्यन्त प्रिय छे ॥६५॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेंक शरणं ब्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

सब धर्म सब के अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्म सब के हमरा मे त्याईग क तु मात्र एक हम सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर के शरण मे आईब जो । हम तोरा सब पाप सब स मुक्त क देबौ तु शोक नै कर ॥६६॥

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभयसूयति ॥

तोरा यी गीतारुप रहस्यमय उपदेश कुनो काल में नै त तप स दूर रहैवाला मनुष्य स कह चाही,नै भक्ति स दूर रहवाला स आउर नै सुनैवाला इच्छावाला साजे हमरा मे दोषदृष्टि रखै हय ओकरा त कहियो कहबको नै चाहि॥६७॥

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वमिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेबैष्यत्यसंशयः॥

जे मनुस्य हमरा स परम प्रेम क क यै परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्र के हमरा भक्तसब मे कहतै,उ हमरे प्राप्त करतै, यै मे कुनो संदेह नै हय॥६८॥

न च तस्मान्मनुष्येषु काश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यःप्रियतरो भुवि॥

गीता के पढै,सुनै आउर यै पर आचरण करै वाला स बडका हमर प्रिय मनुस्य सब में कोई नै हय, तथा नैहियो भविष्यमे हेतै॥६९॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥

जे मनुस्य यै अपना दुनु के संवाद अर्थात् गीताशास्त्र के पढतै,ओकरा स हम ज्ञानयज्ञ स पुजल जेबै,येहन हमर मत हय॥७०॥

श्रद्धावाननसूयश्च श्रृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तःशुभाककककल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥

जे मानव श्रध्दायुक्त आउर दोषदृष्टि स दूर भ क यै गीताशास्त्र के सुनतै,उहो पाप सब स मुक्त भ क उत्तम कर्म करैवाला सब के श्रेष्ठ लोक सब के प्राप्त हेतै॥७१॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥

हे पार्थ!कि तू येकरा एकाग्रचित भ क सुन ले? कि तोहर नै जनैवाला मोह नष्ट भ गेल हौ?॥७२।

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत। ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

अर्जुन कहलकै-हे अच्युत ! अपने के कृपा स हमर मोह नष्ट भ गलै आउर हम स्मृति प्राप्त क लेने छी, आब हम शंका स दूर छी,तै स अपने के अज्ञा के पालन कर बै॥७३॥

संजय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रोषमद्भुतं रोमहर्षणम्॥
व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥

संजय कहै हय- यै तरह स हम यै अद्भुत, रहस्ययुक्त,रोमांचकारक, गोपनीय योग सब के अर्जुन स कहैत खुद योगेस्वर भगवान श्रीकृष्ण स प्रत्यक्ष सुन ली॥७४-७५॥

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥

हे राजन!भगवान श्रीकृष्ण आउर अर्जुन के यै रहस्ययुक्त कल्याणकारक आउर अद्भुत संवाद के बेर बेर बुझ्झ क क हम बेर बेर आनन्दीत भ रहल छी॥७६॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।

विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनःपुनः॥

हे राजन!श्रीहरि के वै अत्यन्त विलक्षण रूप के बेर बेर स्मरण क क हमरा मन में वडका आश्चर्य भ रहल हय आउर हम बेर बेर खुशी भ रहल छी॥७७॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

हे राजन!जै तरफ योगेश्वर भगवन श्रीकृष्ण आउर गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन छय उहे तरफ पर श्री,विजय,विभूति आउर अचल नीती छय, येहन हमर मत हय॥७८॥

ॐतत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

शान्ताकारं भुजगशयनं पद् मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङगम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यांनगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्॥

गीता जी की आरती

जय भगवद्गीते, जय भगवद्गीते।
हरि-हिय-कमल-विहाणि,सुन्दर सुपुनीते॥
कर्म-सुमर्म-प्रकाशिनि, कमासक्तिहरा ।
तत्वज्ञान-विकाशिनि, विद्या ब्रह्म परा॥जय०
निश्चल-भक्ति-विधायिनि, निर्मल, मलहारी।
शरण-रहस्य-प्रदायिनि, सब विधि सुखकारी।जय०
राग-द्वेष-विदारिणि,
कारिरणि मोद सदा।
भव-भय-हारिणि,तारिणि,परमानन्दप्रदा ॥जय०
आसुर भाव विनाशिनि,नाशिनि तम रजनी।
दैवी सद्गुणदायिनि,हरि-रसिका सजनी ॥जय०
समता त्याग सिखावनि,हरि मुख की बानी।
सकल शास्त्र की स्वामिनि, श्रुतियों की रानी।जय०
दया-सुधा बरसावनि,मातु!कृपा कीजै।
हरिपद-प्रेम दान कर,अपनो कर लीजै॥जय०

आरती ओईम् जय जगदीश हरे

ओंम जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्त जनन के संकट,क्षण मे दूर करे॥ॐ जय०॥
जो ध्यावे फल पावे,दुःख विनशे मनका।
सख-सम्पति घर आवे,कष्ट मिटे तनका॥ॐ जय०॥

माता-पिता तुम मेरे,शरण गहूं किसकी।
तुम बिन और न दूजा,आस करूं जिसकी॥ॐ जय ०॥
तुम पूरण परमात्मा,तुम अन्तर्यामी।
पारब्रह्म परमेश्वर,तुम सबके स्वामी॥ॐ जय०॥
तुम करूणा के सागर,तुम पालन कर्ता।
मै मूरख खल कामी,कृपा करो भर्ता॥ॐ जय०॥
तुम हो एक अगोचर,सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूं दयामय,तुमको मैं कुमति॥ॐजय०॥
दीनबन्धु दु:ख हर्ता,तुम रक्षक मेरे।
अपने हाथ उठाओ,द्वार पडा तेरे।ॐ जय ०॥
विषय विकार मिटाओ,पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढाओ,सन्तन की सेवा॥ॐ जय०॥
तन-मन-धन सब तेरा,है सब प्रभु तेरा।
तेरा तुझको अर्पित क्या लागे मेरा॥ॐ जय ०॥

भगवान कृष्ण की स्तुति

जय जय सुरनायक जनसुखदायक कृष्णचंद्र भगवन्ता।
भक्तन हितकारी,असुरसंहारी,
कोमल चित व्यवहर्ता॥
कीजै प्रभु दाया दरशन पाया,अखिल निरंजन कर्ता।
भव दु:ख संहारे राक्षस मारे,जय कृष्ण चंद्र भगवन्ता॥
प्रभु करुणा के सागर सब गुण आगर तुम्हीं सच्चिदानंदा।
यह दु:ख छोडाओ शोक मिटाओ,केशव परम अनन्ता॥
प्रहलाद उबारे हिरण्यकश्यप मारे,बावन रूप धरन्ता।
क्रिट मुकुट मकराकृत कुण्डल,ध्रुव के शोक हरन्ता॥
प्रभु ले राम अवतारा रावण मारा,सीता के शोक हरन्ता।
ब्रह्माण्ड निकाया जगत बनाया,प्रभु परम सच्चिदानन्दा॥
मोहन कर जोरी यह विनती मोरी, श्रीकृष्णचंद्र भगवन्ता।

यह पद जो गावे हरिपद पावे,सुखनिधान प्रियकन्ता॥

॥श्रीहरि॥

गीता – सार

१-सांसारिक मोह के कारणे मनुष्य 'हम कि करुं आउर नै करूं'-यै दुविधा मे फैंस क कर्तव्य स चुईक जाय छै।तै स मोह या सुखभोग के वश मे नै हु अ चाहि।

२-शरीर नाशवान् हय आउर वै के जनैवाला शरीरी अविनाशी हय-यै विवेक के महत्व देनाई आउर खुद के कर्तव्य के पालन करनाई-यै दुनु मे स कुनो एक उपाय के काम में लै स चिन्ता-शोक मीट जाय हय।

३-निष्कामभावपूर्वक मात्र दोसर सब के हित के लेल अपन कर्तव्यके लगनशिलता स पालन केनाई स कल्याण भ जाय हय।

४-करमबन्धन स छुटै के दुगो उपाय हय-कर्म सब के उपाय के जाईन क विना स्वार्थ भाव स करम केनाई आउर तत्वज्ञान के अनुभव केनाई।

५-मनुष्य के अनुकूल-प्रतिकूल दुनु अवस्था मे सुखी-दुःखी नै होईके चाहि,कारण यै स सुखी-दुःखी होईवाला मनुष्य संसार स उपर उईठ क परम आनन्द के अनुभव नै क सकतै।

६-केनाहु कुनो साधन स अन्तःकरण मे समता आब चाहि।समता अबै बेगर मनुष्य सब तरह स निर्विकार नै भ सकतै।

७-सब कुछ भगवाने हय-एना माईन लेनाई सब स उत्तम साधन हय।

८-अन्तकालीन चिन्तन के अनुसारे जीव के गति होइ हय।तै स मनुष्य के हरदम भगवान् के स्मरण करैत अपन कर्तव्य पालन कर चाही,जै स अन्तीम अवस्थामे भगवान के स्मृति बनल रहतै।

९-सभे मनुष्य भगवानके प्राप्त करै के अधिकारी हय,चाहे उ कुनो वर्ण,आश्रम, सम्प्रदाय,देश,वेश सब के कैल्या नै होय।

१०-संसारमे जते विलक्षणता,विशेषता, सुन्दरता,महत्ता,विद्वता सब देखाई दे ,ओकरा भगवानेके माईन क भगवाने चिन्तन कर चाही।

११-यै जगत के भगवाने के स्वरूप माईन क हर मनुष भगवान के विराटरूप के दर्शन क सकै हय।

१२-जे भक्त शरीर-ईन्द्रि सब-मन-बुद्धि समेत अपने खुद के भगवान् के अर्पण क दै हय,उ भगवान के प्रिय हो हय।
१३-संसार में एक परमात्मतत्वे जनै जोग हय। ओकरा जाईन लेना स अमरता के प्राप्ति होई हय।
१४-संसार-बन्धन स छुटै के लेल सत्व,रज आउर तम- यै तीनु गुण सब स अतीत होनाई जरूरी हय।अनन्य भक्ति स मनुष्य यै तीनु गुण सब स अतीत भ जाय हय।
१५-यै संसार के मूल आधार आउर अत्यन्त श्रेष्ठ परमपुरुष एक परमात्मे हय-येना माईन क अनन्यभाव स ओकरे भजन कर चाहि।
१६-दुर्गुण-दुराचार सब स मनुष्य चौरासी लाख योंनि सब एवं नरक सब मे जाय हय आउर दु:ख पबै हय।तै स जन्म-मरण के चक्र स छुटै के लेल दुर्गुण-दुराचार सब के त्याग करनाइ जरुरी हय।
१७-मनुष्य श्रद्धापूर्वक जेहो शुभ कार्य करै हय ओकरा भगवान के स्मरण क क,ओकर नामके उच्चारण क क मात्रे आरम्भ कर चाहि।
१८-सब ग्रंथसब के सार वेद हय,वेदसबके सार उपनिषद् हय,उपनिषदसब के सार गीता हय आउर गीताके सार भगवान् के शरणागति हय।जे अनन्यभावस भगवान् के शरण भ जाय हय,ओकरा भगवान् सभेटा पापसब स मुक्त क दै हय ।

-पूज्य स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके गीताप्रेस,गोरखपुर स प्रकाशित गीता-साधक-संजीवनी ग्रंथ के अधारपर ।

श्रीमद्भगवद्गीताके मुख्य बिषय सबके अनुक्रमणिका

श्लोक बिषय

अर्जुनविषादयोग-नामके १ला अ०॥

१-११ दुनु सेना सब के प्रधान प्रधान शूरवीर सब के गणनाई आउर सामर्थ्य के कहब।
१२-१९ दुनु सेना सबके शंखध्वनिके कहब।
२०-२७ अर्जुन व्दारा सेना के निरीक्षणके प्रसंग।

२८-४७ मोह स व्याप्त भेल अर्जुन के कायरता, स्नेह आउर शोकउक्त वचन।

सांख्योग नाम के २रा अ०॥

१-१० अर्जुनके कायरता के बिषय में श्रीकृष्णार्जुन-संवाद।
११-३० सांख्ययोगके बिषय।
३१-३८ क्षेत्रियधर्मके अनुसार युध्य करै के आवश्यकता के निरुपण।
३९-५३ कर्मयोगके बिषय।
५४-७२ स्थिरबुद्धि पुरुषके लक्षणआउरओकर महिमा

कर्मयोग नामके ३रा अ०॥

१-८ ज्ञानयोग आउर कर्मयोगके अनुसार आनासक्त भाव स नियत कर्म करै के श्रेष्ठाके निरुपण।
९-१६ यज्ञ कर्मसबके जरुरी के निरुपण।
१७-२४ ज्ञानवान्आउर भगवान के लेल सेहो लोकसंग्रहार्थ कर्म के जरुरी।
२५-३५ अज्ञानी आउर ज्ञानवानके लक्षण राग-व्देष स दूर भ क कर्म करै के लेल प्रेरणा।
३६-४३ काम के निरोध के बिषय।

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग- नामके ४ था अ०॥

१-१८ सगुण भगवान के प्रभाव आउर कर्मयोग के बिषय।
१९-२३ योगी महात्मा पुरुष सबके आचरण आउर कर्मयोग के बिषय।
२४-३२ फल प्राप्ती के अलग- अलग यज्ञको कहब।
३३-४२ ज्ञान के महिमा।

कर्मसंन्यासयोग-नामके५वां अ०॥

१-६ सांख्ययोग आउर कर्मयोगके निष्कर्ष।
७-१२ सांखययोगी आउर कर्मयोगी के लक्षण आउर ओकर महिना।
१३-२६ ज्ञानयोग के बिषय।
२७-२९भक्तिसंगेध्यानयोगके व्याख्या।

आत्मसंयमयोग-नामके ६ठा अ०॥

१-४ कर्मयोगके बिषय आउर योगारुढ. पुरुष के लक्षण।

५-१० आत्म-उद्धारके लेल

प्रेरणा आउर भगवत पबै वाला पुरुष के लक्षण।

११-३२विस्तारसध्यानयोगके बिषय।

३३-३६मनकेनिग्रहकेबिषय।

३७-४७योगभ्रष्ट पुरुषके गती के बिषय आउर ध्यान योगिके महिमा।

ज्ञानविज्ञानयोग नामके ७वां अ०॥

१-७विज्ञान सहित ज्ञान के बिषय।

८-१२सभेटा पदार्थसब मे कारणरुप स भगवान के व्यापकता के कहब।

१३-१९ राक्षसी स्वभावबाला सबके निन्दाआउर भगवद्भक्तसबके प्रसंशा।

२०-२३ आरो देवतासबके उपासना के बिषय।

२४-३० भगवान के प्रभाव आउर स्वरुपके नै जानेवालासबके निन्दा आउर जनैवालाके महिमा।

अक्षरब्रह्मयोग -नामके ८वां अ०॥

१-७ब्रह्म, अध्यात्म आउर

कर्मादिके बिषय मे अर्जुन के ७प्रश्न आउर ओकर उत्तर।

८-२२भक्तियोगके बिषय।

२३-२८शुक्ल आउर कृष्णमार्गके बिषय।

राजविद्याराजगुह्ययोग-

नामके ९वां अ०॥

१-६ प्रभावसंगे ज्ञानके बिषय।

७-१०जगतके उत्पत्तिके बिषय।

११-१५ भगवान के तिरस्कार करेवाला राक्षसी प्रकृतिवालासबके निन्दा आउर दैवीप्रकृतिवालासब के भगवद्‌भजनके प्रकार।
१६-१९ सर्वात्मरुपस प्रभावसंगे भगवानके स्वरुपके वर्णन।
२०-२५सकाम आउर निष्काम उपासना के फल।
२६-३४ निष्काम भगवद्‌भक्तिके महिमा।

विभूति योग नामके १०वांअ०॥
१-७ भगवानके विभूति आउर योगशक्तिके
कहब वा ओकर जनै के फल।
८-११ फल आउर प्रभाव संगे भक्तियोगको कहब।
१२-१८अर्जुन स भगवान के स्तुति वा विभूति आउर योगशक्ति के कहै के लेल प्रार्थना।
१९-४२ भगवान स अपन विभूति सबके आउर
योगशक्तिके कहब ।

विश्वरुपदर्शनयोग -नामके ११वां अ०॥
१-४ विश्वरुपके दर्शन-के लेल अर्जुनके प्रार्थना।
५-८ भगवान स अपन विश्वरुपके वर्णन।
९-१४ संजय स धृतराष्ट्र के प्रति विश्वरुपके वर्णन।
१५-३१ अर्जुन स भगवानके विश्वरुपके देखल गेल आउर ओकर स्तुति केनाई।
३२-३४ भगवान स अपन प्रभावके वर्णन आउर अर्जुनके युध्यके लेल उत्साहित केनाई।
३५-४६ भयभीत भेल अर्जुन स भगवानके स्तुति आउर चतुर्भुजरुपके दर्शन करबै के लेल प्रार्थना।
४७-५० भगवान स अपन विश्वरुपके दर्शन-के महिमा के कहब वा चतुर्भुज आउर सौम्यरुपके
देखौनाई

५१-५५ बिना अनन्यभक्तिके चतुर्भुजरुपके दुर्लभता के आउर पदसहित अनन्यभक्तिके कहब।

भक्तियोग -नामके १२वां अ०॥

१-१२ साकार आउर निराकार के उपासक सब के उत्तमता के निर्णय आउर भगवत प्राप्तके उपायको बिषय।

१३-२० भगवत-प्राप्त पुरुषके लक्षण।

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग -नामके १३वां अ०॥

१-१८ज्ञानसंगेक्षेत्र-क्षेत्रज्ञके बिषय।

१९-३४ ज्ञानसंगे प्रकृति-पुरुषके विषय।

गुणत्रयविभागयोग -नामके १४वां अ०॥

१-४ ज्ञानके महिमा आउर प्रकृति -पुरुष स जगत के उत्पत्ति ।

५-१८ सत्,रज,तम-तीनु गुणसबके बिषय।

१९-२७ भगवत प्राप्तिके उपाय आउर गुनातीत पुरुषके लक्षण।

पुरुषोत्तमयोग-नामके १५वां अ०॥

१-६ संसारवृक्षके कथन आउर भगवतप्राप्तिके उपाय।

७-११जीवात्माके बिषय।

१२-१५ प्रभावसंगे परमेश्वरके स्वरुपके बिषय।

१६-२० क्षर,अक्षर,पुरुषोत्तमके बिषय ।

दैवासुरसम्पद्विभागयोग

-नामके १६ वां अ०॥

१-५ फलसंगे दैवी आउर राक्षसी सम्पदाके कहब।

६-२० राक्षसी सम्पदावालसबके लक्षण आउर ओकर अधोगति के कहब।

२१-२४ शास्त्र विपरीत आचरणसबके त्यागनाई आउर शास्त्रानुकुल आचरणसबके लेल प्रेरणा।

श्रध्दात्रयविभाग -नामके १७वां अ०॥

१-६ श्रद्धा आउर शास्त्रविपरीत घोर पाप करैवालासबके विषय।

७-१२ आहार,यक्ष,तप आउर दानके अलग अलग भेद।

२३-२८ ओंम तत्सतके प्रयोगके व्याख्या।

मोक्षसंन्यासयोग -नामके १८वां अ०॥

१-१२ त्याग के विषय।

१३- १८ कर्मसबके होईमें

सांख्यसिद्धान्त के कहब।

१९-४०तीनु गुणसबके अनुसार ज्ञान,कर्म,कर्ता,बुद्धि,धृति आउर सुखके अलग अलग भेद।

४१-४८ फलसंगे वर्णधर्म के विषय।

४९-५५ ज्ञाननिष्ठाके विषय।

५६-६६ भक्ति संगे कर्मयोगके विषय।

६७-७८ श्रीगीताजिके महात्म्य।

mwallpapers.com